UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180906

UNIVERSAL
LIBRARY

प्रकीर्णक पुस्तक-माला ५१

षोड़शी

(सामाजिक नाटक)

मूल लेखक

स्व० शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय

अनुवादकर्त्ता

धन्यकुमार जैन

प्रकाशक

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४.

मूल्य दस आने

अप्रैल, १९२९

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६, केळेवाडी, गिरगांव मुंबई

निवेदन

पाठकोंने शरद् बाबूका 'देना पाऊना' (लेन-देन) उपन्यास पढ़ा होगा। ग्रन्थकर्त्ताने कुछ मित्रोंके अनुरोधसे स्वयं ही उसे 'नाटक' का रूप दिया था जिससे वह रंगमंचपर खेला जा सके। यह उसीका अनुवाद है। उपन्यासकी मुख्य नायिका षोड़शीके नामसे ही इसका नामकरण हुआ है।

— प्रकाशक

षोड़शी

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

चण्डीगढ़—गाँवका रास्ता

[लगभग तीसरा पहर । चण्डीगढ़के संकीर्ण ग्राम्य-पथपर संध्याकी धूसर छाया उतरी आ रही है । पास ही बीजगाँवके जमींदारकी कचहरीके फाटकका कुछ हिस्सा दिखाई दे रहा है । दो राहगीर जल्दी जल्दी उस रास्तेसे चले जा रहे हैं । उन्हींके पीछे पीछे एक किसान खेतका काम-धन्धा खतम करके घर लौट रहा है, उसके बायें कँधेपर हल और दाहने हाथमें पैना है,—वह आगे आगे चलते हुए बैलोंको लक्ष्य करके कहता जाता है, "धौला, सीधा चल बेटा, सीधा चल ! कलुआ, फिर, फिर ! फिर पराये पेड़-पौधोंपर मुँह मारा !"

कचहरीके गुमाश्ते एककौड़ी नन्दीने धीरे धीरे प्रवेश किया और वह उत्कण्ठित आशंकासे रास्तेके एक तरफ़ गरदन उचकाकर किसी एक चीजको देखनेकी कोशिश करने लगा । उसके पीछेके रास्तेसे जल्दी जल्दी विश्वम्भरने प्रवेश किया । वह कचहरीका बड़ा पियादा है, तगादेको गया था । उसे अकस्मात् खबर मिली कि बीजगाँवके नये जमींदार जीवानन्द चौधरी चण्डीगढ़ आ रहे हैं । लगभग दो कोसकी दूरीपर उनकी पालकी उतारकर उसके वाहक कुछ देरके लिए आराम कर रहे हैं,—अब आनेहीवाले हैं ।]

विश्वम्भर—नन्दी साहब, खड़े कर क्या रहे हो ? हुजूर आ रहे हैं जो !

एककौड़ी—(चौंककर मुँह फेरता है। यह दुःसंवाद घण्टे-भर पहले उसके भी कानोंमें पड़ा है। वह उदास कण्ठसे कहता है—) हूँ।

विश्वम्भर—'हूँ' क्या जी ? खुद हुजूर आ रहे हैं जो !

एककौड़ी—(विकृत स्वरमें) आते हैं तो मैं क्या करूँ ? कोई खबर नहीं, इत्तिला नहीं,—हुजूर आ रहे हैं ! हुजूर हैं, तो कोई सिर तो उतार नहीं लेंगे !

विश्वम्भर—(इस आकस्मिक उत्तेजनाका अर्थ न समझ सकनेके कारण क्षण-भर मौन रहकर कहता है—) अरे, तो क्या तुमने जान हथेलीपर रख ली है ?

एककौड़ी—जान हथेलीपर रखनेकी क्या बात है ! मामाकी जायदाद मिल गई है, तो कोई उसे बापकी जायदाद तो कहेगा नहीं ! तू जानता है विश्वम्भर, कालीमोहन बाबूने उसे निकाल दिया था, वे घरमें घुसने तक नहीं देते थे। त्याज्य-पुत्र ठहरानेका सब ठीक ठाक हो गया था कि अचानक चटसे मर गये, इसीसे तो जमींदार हुआ है ! नहीं तो आज कहाँ ठिकाना था ? मैं क्या जानता नहीं !

विश्वम्भर—मगर जानकर फायदा क्या हो रहा है, कहो तो सही ? यह मामा नहीं है, भानजा है। यह बात उसके कानमें पड़ गई तो घरमें दिआ-बत्ती देनेको भी किसीको बाकी न छोड़ेगा। पकड़ेगा और धाँय-से बन्दूककी गोलीसे उड़ा देगा। ऐसे कितनोंको इस बीचमें ही मारकर जमीनमें गाड़ दिया है, जानते हो ? मारे डरके कोई बात तक नहीं करता।

एककौड़ी—हाँ,—बात तक नहीं करता ! मनमानी घरजानी है न !

विश्वम्भर—अरे, शराबी जो ठहरा ! उसे क्या होश-हवास रहता है, या दया-माया है ! बन्दूक-पिस्तौल, छुरी-छुरोंके बिना कहीं एक कदम भी नहीं हिलता। मार डाला तो फिर क्या करोगे, कहो तो सही ?

एककौड़ी—तू भी तो उस दिन सदर-बैठकमें गया था,—देखा था उसे ?

विश्वम्भर—नहीं, ठीकसे तो नहीं देखा, पर उसे देखा ही समझो। येः गलमुच्छे, येः मूँछें, येः छाती, जवा फूल-सी लाल सुर्ख आँखें भट्टे जैसी भन भन करती घूम रही थीं—

एककौड़ी—विश्वम्भर, तो चल, भाग चलें।

विश्वम्भर—अरे, भागकर उससे कै दिन बच सकते हो नन्दी-साहब ? झोंटा पकड़कर घसीट लायेगा और खोदकर जमीनमें गड़वा देगा।

एककौड़ी—क्या किया जाय फिर, बता ? वह शराबी आकर अगर कह बैठे कि शान्ति-कुंजमें रहूँगा, तब ?

विश्वम्भर—कितनी बार तुमसे कहा है नन्दी-साहब, ऐसा काम मत करो, मत करो, मत करो। सालों-साल बराबर झूठमूठ शान्ति-कुंजकी मरम्मत-खाते खरचा लिखते गये, इस गरीबकी बातपर जरा भी ध्यान नहीं दिया।

एककौड़ी—तू भी तो कचहरीका बड़ा सरदार है, तू भी तो—

विश्वम्भर—देखो, ये सब शैतानी जाल मत रचो, कहे देता हूँ! मेरे ऊपर कसूर लादा नहीं कि—अरे, वह एक पालकी दीख रही है!

[नेपथ्यमें वाहकोंकी आवाज सुनाई देती है। विश्वम्भर भागनेके लिए तैयार एककौड़ीका हाथ पकड़ लेता है और वह अपनेको छुड़ानेकी कोशिश करता हुआ कहता है—]

एककौड़ी—हाथ छोड़ न, हरामजादे!

विश्वम्भर—(आहिस्तेसे दबी जबानसे) भागते कहाँ हो ? पकड़ लिया तो गोलीसे मार डालेगा!

[इतनेमें पालकी सामने आ पहुँचती है। दोनों स्थिर होकर खड़े हो जाते हैं। पालकीके भीतर जमींदार जीवानन्द चौधरी बैठे हैं, उन्होंने अपना मुँह जरा-सा बाहर निकालकर पूछा—]

जीवानन्द—क्यों जी, इस गाँवमें जमींदारकी कचहरी किधर है, तुम कोई बता सकते हो ?

एककौड़ी—(हाथ जोड़कर) सभी तो हुजूरका राज्य है।

जीवानन्द—मैं राज्यकी खबर नहीं जानना चाहता। कचहरीका पता जानते हो ?

एककौड़ी—जानता हूँ हुजूर! वह रही।

जीवानन्द—तुम कौन हो ?

[एककौड़ी और विश्वम्भर घुटने टेककर जमीनसे सिर लगाकर नमस्कार करते हैं और फिर दोनों उठकर खड़े हो जाते हैं।]

एककौड़ी—हुजूरका दास एककौड़ी नन्दी।

जीवानन्द—ओ–हो, तुम हो एककौड़ी,—चण्डीगढ़ साम्राज्यके सर्वेसर्वा ? मगर सुनो एककौड़ी, तुमसे एक बात कहे देता हूँ । मैं खुशामदकी बातें बिलकुल नापसन्द नहीं करता, यह ठीक है, लेकिन उसकी एक हद भी मुझे पसन्द है। इसे न भूल जाना । तुम्हारी कचहरीकी तहसील कितनी है ?

एककौड़ी—जी हुजूर, चण्डीगढ़ तालुकेकी आय होगी पाँच हज़ारके करीब ।

जीवानन्द—पाँच हज़ार ? अच्छा, ठीक है ।

(वाहक पालकी नीचे उतारकर रख देते हैं । जीवानन्द उतरते नहीं, सिर्फ पैर बाहर निकालकर जमीनपर रख देते हैं और सतर होकर बैठकर कहते हैं—)

अच्छी बात है । मैं यहाँ पाँच-छह दिन रहूँगा, मगर इसी बीचमें मुझे दस हज़ार रुपये चाहिए, एककौड़ी । तुम सब रिआयाको इत्तिला कर दो कि कल सबके सब कचहरीमें हाज़िर हों ।

एककौड़ी—जो हुकम । हुजूरके हुकमसे कोई गैरहाज़िर न रहेगा ।

जीवानन्द—इस गाँवमें बदमाश-उद्दण्ड रिआया भी कोई है, जानते हो ?

एककौड़ी—जी नहीं, ऐसा तो कोई,—सिर्फ एक तारादास चक्रवर्ती है,—लेकिन वह हुजूरकी रिआया नहीं है ।

जीवानन्द—तारादास कौन है ?

एककौड़ी—गढ़चण्डीका पुजारी ।

जीवानन्द—इसी आदमीने क्या दो साल पहले एक मुकद्दमेमें मेरे खिलाफ गवाही दी थी,—एक रिआयाकी तरफसे ?

एककौड़ी—(सिर हिलाकर) हुजूरकी निगाहसे कोई बात छिपी नहीं रहती। जी हाँ, यही है वह तारादास ।

जीवानन्द—हूँ । उस समय इसने बहुत रुपयोंके फेरमें डाल दिया था। कितनी जमीन लेकर रहता है वह ?

एककौड़ी—(मन-ही-मन हिसाब लगाकर) साठ-सत्तर बीघेसे कम नहीं ।

जीवानन्द—उसे तुम आज ही कचहरीमें बुलाकर कह दो कि बीघा-पीछे दस रुपये मेरी नज़रके चाहिए ।

एककौड़ी—(संकोचके साथ) जी, मगर वह तो छूट-पट्टीकी देवोत्तर* जमीन है हुजूर ।

---

*देवताके नामपर उत्सर्गकी हुई जमीन-जायदाद, जिसपर कोई कर नहीं लगता ।

जीवानन्द—नहीं, देवोत्तर जमीन इस गाँवमें एक छटाँक भी नहीं है। सलामी नहीं मिलनेसे सब जप्त कर ली जायगी।

एककौड़ी—आज ही उसके पास हुकम भिजवाता हूँ।

जीवानन्द—सिर्फ हुकम भिजवानेकी बात नहीं, रुपये उसे दो ही दिनके भीतर अदा कर देने होंगे।

एककौड़ी—मगर हुजूर—

जीवानन्द—मगर-वगर रहने दो एककौड़ी।—यही सीधी सड़क गई है न मेरे बरई-किनारेके शान्ति-कुंजको? महावीर, पालकी उठानेको कह।

[वाहक लोग पालकी उठाकर चल देते हैं।]

एककौड़ी—जो सोचा था सो ही हुआ रे बिसम्भर! यह तो सीधा जाकर शान्ति-कुंजमें ही ठहरना चाहता है।

विश्वम्भर—नहीं तो क्या तुम्हारी कचहरीके मवेशी-खानेमें आके ठहरेगा?

एककौड़ी—वहाँ तो शायद घुसनेका रास्ता भी न होगा रे। और यदि दरवाजे-जंगले भी सब चोरी चले गये हों तो ताज्जुब नहीं। हो सकता है कि कमरोंमें शेर-भालू घुसे पड़े हों। वहाँ क्या है क्या नहीं, सो मैं कुछ भी तो नहीं जानता रे बिसम्भर!

विश्वम्भर—और मैं ही क्या जानता हूँ तुम्हारे दरवाजों-जंगलोंका हाल? और फिर शेर-भालुओंके पास तो मैं तहसील वसूल करने गया नहीं साहब!

एककौड़ी—अब इस रातके वक्त कहाँ तो बत्ती, कहाँ आदमी, कहाँ खाने-पीनेका इन्तजाम—

विश्वम्भर—सड़कपर खड़े खड़े रोनेसे तो आदमी आ जुटेंगे, मगर बत्ती और खाने-पीनेका इन्तजाम—

एककौड़ी—तुझे क्या! तू तो कहेगा ही रे पाजी, बदमाश, हरामजादा—

[प्रस्थान।]

द्वितीय दृश्य

शान्ति-कुंज

[बरई नदीके किनारे बीजगाँवके जमींदार स्वर्गीय राधामोहनका बनवाया हुआ विलास-भवन शान्ति-कुंज। मरम्मतके अभावसे आज वह टूटा-फूटा, सौन्दर्य-हीन और खण्डहर-सा हो रहा है। उसीमें एक कमरेके अन्दर एक तख्तपर बिस्तर बिछे हुए हैं। चद्दरके अभावमें उनपर एक कीमती सफेद दुशाला बिछा हुआ है। सिरहानेकी तरफ एक गोल टेबिल है जिसपर मोटी-सी एक जिल्द-दार किताबपर अधजली मोमबत्ती चुपकी खड़ी है। उसीके पास एक पिस्तौल पड़ी है। बगलमें एक स्टूल है जिसपर सोड़ाकी बोतल, शराबसे भरा गिलास और बोतल रक्खी है। बोतल करीब खतम हो चली है। पास ही एक सोनेकी घड़ी है जो चुरुटकी राखके लिए आधार बनाई गई है,—अधजली सिगरेटसे धुआँ निकल रहा है। सामनेकी दीवारपर दो नेपाली भुजाली टँगी हुई हैं। एक कोनेमें दीवारके सहारे बन्दूक खड़ी है और उसके पास फर्शपर एक सियारकी लाश पड़ी है जिसकी देहसे खून बहते बहते सूख गया है। इधर-उधर बिखरी हुई कई शराबकी बोतलें पड़ी हैं। एक डिशमें खाये-हुएमेंसे कुछ जूठा बचा हुआ पड़ा है,—अभीतक वह साफ नहीं की गई है। उसके पास ही एक कीमती ढाकेका दुपट्टा, जो हाथ पोंछकर डाल दिया गया है, जमीनमें पड़ा लोट रहा है। जीवानन्द चौधरी बिस्तरपर एक करवटसे तिरछे लेटे हुए हैं। पाँयतेकी तरफका जंगला टूटा हुआ है, उसमेंसे बाहरसे पेड़की डालीका कुछ हिस्सा भीतर घुस आया है। दोनों तरफ दो दरवाजे हैं,—एक दरवाजा खोलकर जीवा-नन्दके सेक्रेटरी प्रफुल्लचन्द्र भीतर प्रवेश करते हैं।]

प्रफुल्ल—वह आदमी यहाँ भी आया था भाईसाहब !

जीवानन्द—कौन आदमी ?

प्रफुल्ल—वही मद्रासी साहबका कर्मचारी, जो ईखकी खेती और चीनीके कारखानेके लिए साराका सारा दक्षिणका मैदान खरीदना चाहता है। सचमुच ही क्या उसे बेच देंगे ?

जीवानन्द—जरूर। मुझे रुपयोंकी बड़ी भारी जरूरत है।

प्रफुल्ल—मगर बहुत-सी रैयतोंका सत्यानाश हो जायगा।

जीवानन्द—सो होगा, पर मेरा तो सत्यानाश होते होते बच जायगा।

प्रफुल्ल—और एक सज्जन बाहर बैठे हुए हैं, उनका नाम है जनार्दन राय। यहाँ आनेके लिए कह दूँ ?

जीवानन्द—नहीं भाई-साहब, अभी रहने दो। साधु-दर्शन हर वक्त नहीं करना चाहिए,—शास्त्रोंमें इसका निषेध है।

प्रफुल्ल—(हँसकर) सुना है, खूब धनवान् आदमी है।

जीवानन्द—सिर्फ धनवान् ही नहीं, गुणवान् भी है। हाथचिट्ठा, खत-तमस्सुक, दलील-दस्तावेज, जो चाहे सो यह बना दे सकता है;—नकल नहीं, अनुकरण नहीं,—एक दम नया और अपूर्व;—जिसको कि 'सृष्टि' कहते हैं। महापुरुष व्यक्ति है।

प्रफुल्ल—ऐसे लोगोंको प्रश्रय न देना चाहिए भाई साहब !

जीवानन्द—इसकी जरूरत नहीं प्रफुल्ल, ये अपनी प्रतिभासे जिस उच्चतामें विचरण करते हैं, हमारा प्रश्रय वहाँतक पहुँच ही नहीं सकेगा !

प्रफुल्ल—सुना है, सारा मैदान आपका अकेलेका नहीं है भाईसाहब, इस विषयमें,—

जीवानन्द—नहीं प्रफुल्ल, इस मामलेमें मैं तुम्हें बात न करने दूँगा। कर्जमें गले तक डूबा हुआ हूँ। अगर तुम्हारा यह भले-बुरेका भूत सरपर सवार हो गया, तो फिर रसातल पहुँचनेमें ज़्यादा देर न होगी।

[एक गिलास शराब पीकर]

जीवानन्द—तुम सोचते होगे कि रसातल पहुँचनेमें अब देर ही क्या है ! देर नहीं है, सो मैं जानता हूँ। और भी एक बात तुमसे मैं ज़्यादा जानता हूँ प्रफुल्ल,—इसका ओर-छोर भी नहीं है कहीं।

[प्रफुल्ल चुपचाप मुँह उठाकर देखने लगता है।]

जीवानन्द—यह तुममें बड़ा भारी दोष है प्रफुल्ल, निबटी हुई चीजको भी जब बिलकुल निबड़ती हुई सुनते हो तो तुम्हारी आँखें डबडबा आती हैं। जाओ तो भइया, जरा एककौड़ीको भेज दो मेरे पास। और सुनो, तुम्हें एक बार सदरमें जाकर मद्रासी साहबसे बातचीत पक्की करनी होगी। समझे ?

प्रफुल्ल—(सिर हिलाकर) अभी तो वक्त है, आज भी जाया जा सकता है। साहबके साथ गाड़ी है।

जीवानन्द—अच्छी बात है, तो उन्हींकी गाड़ीमें चले जाओ ।

[प्रफुल्लका प्रस्थान और एककौड़ीका प्रवेश]

जीवानन्द—रुपये वसूल हो रहे हैं एककौड़ी ?

एककौड़ी—हो रहे हैं हुजूर ।

जीवानन्द—तारादासने रुपये दिये ?

एककौड़ी—आसानीसे देना नहीं चाहा । आखिर जब कान पकड़वाकर घुड़-दौड़ और मेढ़की नाच नचानेका प्रस्ताव किया तब कहीं देनेको राजी होकर घर गया । आज देनेकी बात थी ।

जीवानन्द—फिर ?

एककौड़ी—महावीरसिंहके साथ हुजूरके पालकीवालोंको भेजा है उसे पकड़ लानेके लिए ।

जीवानन्द—(शराब पीकर) ठीक किया । तुम लोगोंके यहाँ शायद विलायती शराबकी दुकान न होगी । खैर, कोई बात नहीं, जितनी मेरे पास है उससे एक दिनका काम तो चल ही जायगा । मगर, एक बात और भी है, एककौड़ी ।

एककौड़ी—हुकम कीजिए ?

जीवानन्द—सुनो एककौड़ी, मैंने ब्याह,—हाँ, ब्याह नहीं किया,—शायद आगे भी कभी न करूँगा । (थोड़ी देर बाद) मगर इसके मानी यह नहीं कि मैं कोई भीष्मदेव होऊँ,—तुमने ‘ महाभारत ’ पढ़ा है या नहीं ?—उसका भीष्मदेव बनकर मैं नहीं बैठा,—और शुकदेव भी नहीं बना,—अरे कुछ मतलब अतलब भी समझते हो एककौड़ी ? हाँ, सो एक चाहिए, समझे ?

(एककौड़ी मारे शरमके सिर झुकाकर जरा गर्दन हिला देता है ।)

जीवानन्द—और सबोंकी तरह ऐर-गैरसे ये सब बातें कहना कहलाना मैं पसन्द नहीं करता, उससे धोका हो जाता है । अच्छा अभी जाओ ।

एककौड़ी—मैं तारादासको देखूँ जाकर । वह इस बीचमें रिआयाको कहीं बिगाड़ न दे । (जाने लगता है)

जीवानन्द—रिआयाको बिगाड़ देगा ? मेरी मौजूदगीमें ?

एककौड़ी—हाँ हुजूर, ऐसा कर सकते हैं ये लोग ।

जीवानन्द—एक तारादासहीको तो मैं जानता था, उसमें फिर 'ये लोग' कौन आ कूँदे ?

एककौड़ी—तारादासकी लडकी भैरवी। नहीं तो तारादास खुद उतना बुरा आदमी नहीं, असलमें लड़की ही सत्यानाशकी जड़ है। गाँवके जितने बदमाश-गुंडे हैं, सब जैसे उसके गुलाम हों।

जीवानन्द—अच्छा ? कितनी उमर है उसकी ? देखनेमें कैसी है ?

[कमरेमे क्रमशः संध्याका धुंधलापन छाने लगता है।]

एककौड़ी—उमर पचीस-छब्बीसकी हो सकती है। और रूपकी बात अगर पूछते हैं, तो उसे एक हट्टा-कट्टा सिपाही ही समझिए। न तो उसमें औरतोंकी-सी लौनी छबि है, और न वैसी गठन ही है। जैसे कोई लड़ाकू हथियार बाँधकर लड़ाई करने जा रहा हो। इसीसे तो गाँवके लोग समझते हैं कि गढ़की वे ही साक्षात् चण्डी हैं।

जीवानन्द—(उत्साह और कुतूहलसे सतर होकर बैठ जाता है) कहते क्या हो एककौड़ी ? भैरवीका पूरा किस्सा खोलके बताना जरा, सुनूँ।

एककौड़ी—भैरवी तो किसीका नाम नहीं, हुजूर। गढ़चण्डीकी मुख्य सेविकाओंकी उपाधि है यह। मौजूदा भैरवीका नाम षोड़शी है,—इसके पहले जो थी, उसका नाम था मातंगिनी। माताके आदेशसे उनका सेवक कभी पुरुष नहीं हो सकता, हमेशासे स्त्रियाँ ही होती आई हैं।

जीवानन्द—अच्छा, ऐसी बात है क्या ? यह तो कभी सुना नहीं।

एककौड़ी—माताके आदेशसे ब्याहकी तीसरी रातके बाद फिर भैरवी पतिका स्पर्श तक नहीं कर सकती। इसीसे, दूर-देशसे किसी दुखी गरीबका लड़का पकड़ लाकर उससे ब्याहकी रस्म अदा कर दी जाती है और फिर उसे दूसरे ही दिन रुपये-पैसे देकर बिदा कर दिया जाता है। फिर उसकी कोई छाँह भी नहीं देख सकता। यह नियम है, यही हमेशासे चला आ रहा है।

जीवानन्द—(हँसकर) कहते क्या हो एककौड़ी, एकदम देश-निकाला ? भैरवी मनुष्य है, रातको एकान्तमें एक गिलास सुधा उँडेलकर देना,—गरम-मसाला देकर जरा-सा महाप्रसाद बनाकर खिलाना,—कतई कुछ भी नहीं कर सकती ?

एककौड़ी—(सिर हिलाकर) जी नहीं हुजूर। माताकी भैरवी पतिका स्पर्श नहीं कर सकती,—लेकिन इसका मतलब यह थोड़े ही है कि पतिके सिवा

गाँवमें और कोई मर्द ही न हो। मातू भैरवीको भी देखा है मैंने, और षोड़शीको भी देख रहा हूँ। लोग क्या ऐसे ही ख्वामख्वाह,—उसकी गवाही देखिए न,—बात-बातमें हुजूरके साथ ही मामला-मुकद्दमा लगा देती है!

जीवानन्द—औरत-महन्त ही जो ठहरी! इसमें कोई दोष नहीं। एककौड़ी, जरा बत्ती तो जला दो।

एककौड़ी—(बत्ती जलाकर) अब जाऊँ हुजूर?

जीवानन्द—अच्छा जाओ। जरा वह किताब तो देते जाओ।

(किताब देकर प्रणाम करके एककौड़ी जाता है।)

(जीवानन्द लेटकर पुस्तक पढ़नेमें मन लगाता है। थोड़ी देर बाद बाहर किसीके पैरोंकी आहट सुनाई देती है।)

जीवानन्द—कौन?

सरदार—(षोड़शीको साथ लेकर भीतर आकर) साला तारादास तो भाग गया हुजूर, उसकी बेटीको पकड़ लाया हूँ।

जीवानन्द—(किताब पटककर भड़भड़ाकर उठ बैठता है और आश्चर्यके साथ कहता है–) किसको? भैरवीको? (कुछ देर बाद) ठीक किया। अच्छा जा।

(सरदारका अपने अनुचर पियादोंके साथ प्रस्थान।)

जीवानन्द—तुम लोगोंकी आज रुपये देनेकी बात थी। रुपये लाई हो? (षोडशीके गलेसे आवाज नहीं निकलती) नहीं लाई, मगर क्यों?

षोडशी—हम लोगोंके पास हैं नहीं।

जीवानन्द—नहीं होनेसे तुम्हें रात-भर पियादोंके घरमें बन्द रहना पड़ेगा। इसके मानी समझती हो?

[षोड़शी दोनों हाथोंसे दरवाजेकी चौखट थामे हुए आँखें मीचकर अपनेको मूर्च्छित होनेसे बचानेकी कोशिश करने लगी। उसके भयानक विवर्ण चेहरेको जीवानन्दने देख लिया। एक मिनट-भर वह न जाने कैसा आच्छन्नकी तरह बैठा रहा। इसके बाद सहसा बत्ती हाथमें लेकर षोड़शीके पास पहुँचा। बत्ती उसके मुँहके सामने थामकर एकटक वह उसके गेरुआ-वसन, बिखरे हुए रूखे बाल, उसके फक-पड़े ओठ और सबल स्वस्थ सरल शरीर,—सबको मानो वह अपनी दोनों फैली हुई आँखोंसे चुपचाप निगलने लगा। इसी तरह कुछ देर बीत जाती है।]

जीवानन्द—(लौटकर बत्तीको यथास्थान रखके शराबकी बोतलसे लगातार कई

गिलास शराब पीकर) तुम्हारा नाम षोड़शी है न ? (षोड़शी चुप रहती है) तुम्हारी उमर क्या है ? (कोई जवाब न पाकर कठोर स्वरमें) चुपकी साध लेनेसे कोई विशेष लाभ नहीं होगा। जवाब दो ?

षोड़शी—(मृदु स्वरमें) मेरी उमर अट्ठाईस साल।

जीवानन्द—अच्छी बात है। यह बात अगर सच है तो इन उन्नीस-बीस वर्षोंसे तुम भैरवीत्व कर रही हो; बहुत सम्भव है, इस बीचमें तुमने काफी रुपया इकट्ठा कर लिया होगा। फिर दे क्यों नहीं सकतीं ?

षोड़शी—आपसे तो पहले ही कह चुकी हूँ कि मेरे पास रुपये नहीं हैं।

जीवानन्द—नहीं हैं तो और और लोग जैसा करते हैं, वैसा करो। जिनके पास रुपये हैं उनके पास जमीन गिरवी रखकर या बेचकर रुपये अदा करो।

षोड़शी—और लोग कर सकते हैं, जमीन उनकी ठहरी। मगर देवोत्तर सम्पत्ति गिरवी रखने या बेचनेका हक तो मुझे नहीं है।

जीवानन्द—(सहसा हँसकर) अरे लेनेका हक मुझे भी क्या खाक है ? एककौड़ीका भी नहीं। फिर भी लेता हूँ, क्योंकि मुझे जरूरत है। यह 'जरूरत' ही संसारमें सबसे बड़ा असली हक है। तुम्हें भी जब कि देनेकी जरूरत है, तब,—समझ गई ? (कुछ देर बाद) खैर, जाने दो, इतनी रातमें क्या अकेली घर जा सकोगी ? जिनके साथ आई हो, उनके साथ तो अब मैं तुम्हें भेजना नहीं चाहता।

षोड़शी—(विनयके साथ) आपका हुकम मिलते ही मैं जा सकती हूँ।

जीवानन्द—(आश्चर्यके साथ) अकेली ? ऐसी अँधेरी रातमें ? बड़ी तकलीफ होगी तुम्हें ! (हँसने लगता है)

षोड़शी—नहीं, मुझे अब जाना ही होगा।

जीवानन्द—(हँसता हुआ) अच्छी बात है, रुपये न हों तो मत दो षोड़शी, उसे छोड़ और भी तो बहुत तरहसे—

षोड़शी—आपके रुपये, आपकी तरहें, आपके लिए ही मुबारक रहें, मुझे जाने दीजिए !

[कई कदम आगे बढ़ती है, पर पियादोंको सामने कुछ दूरीपर बैठे देखकर वह खुद ही ठिठककर खड़ी हो जाती है।]

जीवानन्द—(मुँह गुम्म करके कठोर स्वरमें) तुम शराब पीती हो ?

षोड़शी—नहीं।

जीवानन्द—मैंने सुना है, तुम्हारे कई पुरुष मित्र हैं। सच बात है?

षोड़शी—(सिर हिलाकर) नहीं, झूठी बात है।

जीवानन्द—(कुछ देर चुप रहकर) तुमसे पहलेकी सभी भैरवियाँ शराब पिया करती थीं,—सच है? मातङ्गी भैरवीका चरित्र अच्छा नहीं था,—अब भी उसके गवाह मौजूद हैं। सच है या झूठ?

षोड़शी—(लज्जित मृदु स्वरमें) सच ही तो सुनती हूँ।

जीवानन्द—सुना है? अच्छी बात है। तो सहसा तुम ही क्यों परम्परा छोड़कर, गोत्र छोड़कर, भली बनना चाहती हो? (सहसा सतर होकर बैठके कठोर स्वरमें) औरतोंके साथ मैं बहस भी नहीं करता और न उनकी राय-गैरराय ही जानना चाहता हूँ। तुम अच्छी हो या बुरी,—बालकी खाल निकालकर उसका न्याय करनेके लिए भी मेरे पास वक्त नहीं है। मेरा कहना है, चण्डीगढ़की पुरानी भैरवियोंकी जैसे गुजर हुई है, तुम्हारी भी वैसे ही गुजर हो जाय तो काफी है। आज तुम इसी मकानमें रहोगी।

[हुकम सुनकर षोड़शी वज्राहतकी तरह एकबारगी पत्थर-सी खड़ीकी खड़ी रह जाती है।]

जीवानन्द—तुम्हारे मामलेमें किस तरह इतना सहन कर सका, मैं खुद नहीं जानता। और कोई बेअदबी करती तो उसे पियादोंके घर भेज देता। बहुतोंको ऐसा किया है।

षोड़शी—(अकस्मात् रो पड़ती है और गलेमें अंचल डालकर निहोरेके स्वरमें हाथ जोड़कर कहती है—) मेरे पास जो कुछ है, सब लेकर आज मुझे छोड़ दीजिए।

जीवानन्द—क्यों भला? ऐसा रोना-धोना भी मेरे लिए नया नहीं है, ऐसी भीख भी मैं नई नहीं सुन रहा हूँ। मगर उन सबके पति-पुत्र थे,—उनकी बात तो कुछ कुछ समझमें भी आती थी; (षोड़शी मारे आशंकाके सिहर उठती है) मगर तुम्हारे तो वैसी कोई बला ही नहीं है। पन्द्रह-सोलह सालके अन्दर तुमने तो अपने पतिको आँखोंसे भी नहीं देखा। इसके सिवा तुम लोगोंके लिए इसमें कोई दोष भी नहीं है।

षोड़शी—(हाथ जोड़कर आँसुओंसे रुँधे हुए गलेसे) यह सच है कि पतिकी मुझे अच्छी तरह याद नहीं, लेकिन वे हैं तो सही! सच कहती हूँ आपसे,

कभी कोई भी अन्याय मैंने नहीं किया आज तक। दया करके मुझे छोड़ दीजिए,—

जीवानन्द—(आवाज़ देकर) महावीर—

षोड़शी—(मारे आतंकके रोकर) आप मुझे जानसे मार डाल सकते हैं, मगर—

जीवानन्द—अच्छा, ये बहादुरीकी बातें करना उन लोगोंकी कोठरीमें जाकर। महावीर—

षोड़शी—(जमीनपर लोटकर रोती हुई) किसीकी मजाल नहीं जो मेरे प्राण रहते मुझे यहाँसे ले जा सके। मेरी जो कुछ दुर्दशा हो,—मुझपर जितना भी अत्याचार हो, सब आपके सामने ही हो;—आज भी 'आप ब्राह्मण हैं, आज भी आप भले घरानेके शरीफ खानदानके हैं!

जीवानन्द—(कठोर निष्ठुर हँसी हँसते हुए) तुम्हारी बातें सुननेमें तो बुरी नहीं हैं, लेकिन रोना देखकर मुझे दया नहीं आती। मैं बहुत सुना करता हूँ। औरतोंपर मेरा इतना लोभ नहीं,—अच्छी न लगनेसे उन्हें मैं नौकरोंको दे दिया करता हूँ। तुम्हें भी दे देता,—सिर्फ आज ही पहले-पहल मोह-सा पैदा हो गया है। ठीक मालूम नहीं पड़ता,—नशा उतरे बिना ठीक अन्दाज नहीं बैठता।

महावीर—(दरवाजेके पास आकर) हुज़ूर!

जीवानन्द—(सामनेके किबाड़की ओर उँगलीसे इशारा करके) इसको आज रात-भरके लिए उस कोठरीमें बन्द कर दे। कल फिर देखा जायगा।

षोड़शी—(आँसू-भरी आँखोंसे) मेरे सर्वनाशके बारेमें जरा सोच देखिए हुज़ूर! कल मैं फिर किसीको मुँह भी न दिखा सकूँगी।

जीवानन्द—सिर्फ दो-एक दिन। उसके बाद दिखा सकोगी।—उफ्, लीवरका दर्द आज सबेरेसे ही मालूम हो रहा था। अब अचानक जोरका बढ़ गया,—अब ज़्यादा दिक मत करो,—जाओ।

महावीर—(घुड़ककर) अरे उठ न लुगाई,—चल!

जीवानन्द—(जोरकी एक डाँट बताकर) खबरदार, सूअरका बच्चा, अच्छी तरह बात कर! फिर अगर कभी हमारे बगैर हुकमके किसी औरतको पकड़ लाया तो बन्दूकसे उड़ा दूँगा। (सिरका तकिया पेटके पास खींच औंधे पड़कर

दर्दके मारे अस्फुट आर्तनाद करके) आज-भरके लिए उस कोठरीमें बन्द रहो, कल तुम्हारे सती-पनका फैसला हो जायगा। ओफ्,—ए, जाता क्यों नहीं, मेरे सामनेसे इसको हटा ले जा।

महावीर—(आहिस्तेसे) चलिए—

[षोड़शी आज्ञानुसार बगलवाली अँधेरी कोठरीमें जाना चाहती है कि—]

जीवानन्द—षोडशी, जरा ठहरो,—प्रफुल्ल नहीं है, वह सदरको गया है, तुम पढ़ना जानती हो?

षोडशी—जानती हूँ।

जीवानन्द—तो जरा एक काम करती जाओ। वह जो बाक्स है, उसमें एक छोटा-सा कागजका बाक्स है। उसमें कई छोटी-बड़ी शीशियाँ हैं,—जिसपर 'मरफिया' लिखा है, उसमेंसे जरा-सी सोनेकी दवा देती जाओ। मगर खूब होशियारीसे। बड़ा खतरनाक ज़हर है यह। महावीर, जरा बत्ती दिखा देना।

[महावीर बत्ती दिखाता है।]

षोडशी—(बत्तीके उजालेमें काँपते हुए हाथसे शीशी निकालकर) कितनी देनी होगी?

जीवानन्द—(तीव्र वेदनासे अव्यक्त ध्वनि करके) कहा तो तुमसे, बहुत ही थोड़ी। मुझसे उठा भी नहीं जाता, मेरे हाथोंका ठीक नहीं, आँखोंका भी ठीक नहीं। उसीमें एक काँचकी चम्मच-सी पड़ी होगी, उससे आधीसे भी कम देना। जरा भी ज़्यादा दे दिया तो फिर वह नींद तुम्हारी चण्डीके बापके छुटाये भी न छूटेगी।

[नाप ठीक करनेमें षोड़शीके हाथ काँपने लगते हैं। अन्तमें बहुत जतनसे बड़ी सावधानीके साथ निर्देशानुसार दवा लेकर पास आकर खड़ी हो जाती है।]

जीवानन्द—(हाथ बढ़ाकर उस जहरको हाथमें लेकर मुँहमें डालते हुए) बहुत कम ही दी है,—असर न करेगी शायद। अच्छा, इतनी ही रहने दो।

[षोड़शीने बगलवाली कोठरीमें पैर रखा ही था कि इतनेमें एककौड़ीने अत्यन्त व्यस्त और व्याकुल भावसे प्रवेश किया और इधर-उधर देखकर वह जीवानन्दके कानके पास जाकर चुपके-से कुछ कहने लगा। जीवानन्दके चेहरेपर विशेष परिवर्तनका भाव दिखाई देता है। षोड़शी दरवाजेके पास स्ताम्भित होकर खड़ी रह जाती है।]

जीवानन्द—(हाथ हिलाकर षोड़शीके प्रति) तुम्हें कोई डर नहीं, मेरे पास

आओ। (पास आनेपर) पुलिसने मकान घेर लिया है,—मजिस्ट्रेट साहब फाटकके भीतर घुस आये हैं, आ ही पहुँचे समझो। (षोड़शी चौंक उठती है) जिलेके मजिस्ट्रेट टूरमें निकले हैं, कोस-भर दूर कैम्प डाला है। तुम्हारे पिताने रातहीको उनके पास जाकर सब हाल कहा है। सिर्फ इतनेहीसे इतना न होता, किन्तु साहब खुद भी मेरे ऊपर बहुत खफा हैं। उन्होंने पिछले साल दो बार जालमें फँसानेकी कोशिश की थी, पर मैं फँस न सका,—आज एकबारगी हाथों-हाथ पकड़ लिया है। (जरा हँस देता है।)

एककौड़ी—(चेहरा फक पड़ गया है) हुजूर, अबकी बार तो हम लोगोंकी भी खैर नहीं।

जीवानन्द—हो सकता है। (षोड़शीके प्रति) बदला लेना चाहो तो यह अच्छा मौका है। मुझे जेल भी भिजवा सकती हो।

षोड़शी—इसमें जेल क्यों होगी?

जीवानन्द—कानून है। इसके सिवा 'के' साहबके पँजेमें फँसा हूँ। बादुड़-बगानकी मेससें रहते हुए इसीके चक्करमें पड़कर मैं एक बार पन्द्रह-बीस दिनके लिए हवालातमें भी रह चुका हूँ। किसी भी तरह जमानत नहीं ली,—जमानत तब देता भी कौन?

षोड़शी—(उत्सुक कण्ठसे) आप क्या कभी बादुड़बगानके मेसमें रहे हैं?

जीवानन्द—हाँ। उस समय एक प्रणय-काण्डका नायक बना था,—नालायक आयान घोषने किसी तरह पिण्ड ही न छोड़ा,—पुलिसके सुपुर्द कर दिया। खैर, वह बहुत बड़ा किस्सा है। साहब मुझे भूला नहीं है,—खूब पहचानता है। आज भी भाग सकता था, मगर दर्दके मारे खाट पकड़ ली है, हिलनेकी भी कूवत नहीं।

षोड़शी—(कोमल कण्ठसे) क्या आपका दर्द कम नहीं हो रहा है?

जीवानन्द—नहीं। इसके सिवाय यह दर्द अच्छा होनेवाला नहीं है।

षोड़शी—(कुछ देर चुप रहकर) मुझे क्या करना होगा?

जीवानन्द—सिर्फ कहना होगा, तुम अपनी इच्छासे आई हो और अपनी इच्छासे यहाँ हो। इसके बदले तुम्हें मैं सारी देवोत्तर सम्पत्ति छोड़ दूँगा, हजार रुपये नगद दूँगा और नज़रानेके रुपयोंकी तो कोई बात ही नहीं।

[एककौड़ी कुछ कहना चाहता है पर षोड़शीके मुँहकी ओर देखकर रुक जाता है।]

षोड़शी—(सीधे देखकर) इस बातको कबूल करनेका मतलब क्या होता है, आप समझते हैं ? उसके बाद भी क्या मुझे जमीन-जायदाद और रुपये-पैसोंकी जरूरत रह सकती है, आपको विश्वास होता है ?

जीवानन्द—(सफेद फक चेहरेसे) ठीक है, षोड़शी, ठीक है। जिन्दगीमें तुमने आज तक पाप नहीं किया,—और वह तुम कर भी नहीं सकतीं, यह सच है। (जरा हँसकर) रुपये-पैसेके बदले इज्जत नहीं बेची जा सकती,—इस बातको तो मैं भूल ही गया था। सो ही सही; जो सच हो सो ही तुम कहना,—जमींदारकी तरफसे अब कोई अत्याचार तुमपर नहीं होगा।

[एककौड़ी व्याकुल होकर फिर कुछ कहना चाहता है, मगर बन्द दरवाजेपर बार बार धमाका सुनकर उसका चेहरा फक पड़ जाता है और वह चुप रह जाता है।]

जीवानन्द—(आहट करके) खुला है, भीतर आइए।

[दरवाजा खुला। मजिस्ट्रेट, इन्स्पेक्टर, कई कानिस्टब्ल और तारादास चक्रवर्ती प्रवेश करते हैं।]

तारादास—(भीतर घुसते ही रो-रोकर) धर्मावतार, हुजूर, यह रही मेरी लड़की, माता चण्डीकी भैरवी। आपकी दया नहीं होती तो हुजूर, ये लोग रुपयोंके लिए मेरी लड़कीको मार डालते, धर्मावतार !

मजिस्ट्रेट—(षोड़शीको नीचेसे ऊपर तक देखकर) तुम्हारा ही नाम षोड़शी है ? तुम्हींको घरसे पकड़वाकर यहाँ बन्द कर रक्खा है इन्होंने ?

षोड़शी—(सिर हिलाकर) नहीं, मैं अपनी इच्छासे आई हूँ। किसीने मेरी देहको हाथ नहीं लगाया।

तारादास—(चिल्ला उठता है) नहीं हुजूर, बिलकुल झूठ बात है,—गाँव-भर गवाह है। बिटिया मेरी रसोई बना रही थी, आठ आठ पियादे जाकर मेरी बिटियाको मारते मारते घसीट लाये हैं !

मजिस्ट्रेट—(जीवानन्दकी तरफ कनखियोंसे देखकर षोड़शीसे) तुम डरो मत, कोई डरकी बात नहीं, तुम सच बात कह दो। तुम्हें घरसे पकड़ लाये हैं ?

षोड़शी—नहीं, मैं अपने आप आई हूँ।

मजिस्ट्रेट—यहाँ आनेकी तुम्हें क्या ज़रूरत थी ?

षोड़शी—मुझे काम था।

मजिस्ट्रेट—इतनी रात बीते भी घर लौटनेमें देर हो रही थी !

तारादास—(चिल्लाकर) नहीं हुजूर, सब झूठ बात है,–सब बनाई हुई, शुरूसे लेकर आखिर तक सब सिखाई हुई बातें हैं।

मजिस्ट्रेट—(उसकी तरफ ध्यान न देकर सिर्फ जरा मुसकराते हैं और मुँहसे सीटी बजाते हुए पहले बन्दूक और बादमें पिस्तौल उठाकर जीवानन्दसे—) I hope, you have permission for this.*

[धीरे धीरे घरसे बाहर प्रस्थान]

(तारादास हतज्ञानकी तरह स्तब्ध और मायाभिभूत-सा होकर खड़ा रह जाता है।)

मजिस्ट्रेट—(नेपथ्यमें) हमारा घोड़ा ला।

[घोड़ेकी टापोंकी आवाज़ सुनाई देती है।]

तारादास—(अकस्मात् अपने हृदयविदारक रोदनसे सबको चकित करके पुलिस-कर्मचारीके पैरों पड़कर रोता है) बाबू साहब, मेरी क्या दशा होगी! मुझे तो अब जमींदारके लोग जिन्दा खोदके गाड़ देंगे!

इन्स्पेक्टर—(ये उमरमें जरा बड़े हैं, व्यस्त होकर चटसे कोशिश करके उसे हाथ पकड़कर उठा देते हैं और सदय कण्ठसे कहते हैं—) डर किस बातका महाराज, तुम जैसे रहा करते थे, वैसे ही रहो जाकर। स्वयं मजिस्ट्रेट साहब तुम्हारे सहायक हैं,—तुमपर अब कोई जुल्म नहीं कर सकता। (कनखियोंसे जीवानन्दकी ओर देखते हैं।)

तारादास—(आँखें पोंछता हुआ) साहब तो गुस्सा होकर चले गये बाबू साहब!

इन्स्पेक्टर—(मुसकराकर) नहीं महाराज, गुस्सा नहीं हुए,—मगर हाँ, आजका यह मज़ाक़ वे आसानीसे भूल सकेंगे ऐसा नहीं मालूम होता। इसके सिवा हम लोग भी नहीं मरे हैं, थाना भी जैसा कुछ है, है ही। (कनखियोंसे जीवानन्दकी ओर देखकर कुछ देर बाद) अब चलो महाराज, चल दें। ऐसी रातमें जाना भी तो बहुत दूर है!

सब-इन्स्पेक्टर—(जो उमरमें जवान है। जरा हँसकर) लड़कीको छोड़कर महाराज क्या अकेले ही चलेंगे?

[इस बातपर कानिस्टबिल तक सभी हँस पड़ते हैं। एककौड़ी छतके सोटोंकी तरफ एकटक देखता रहता है। तारादासकी आँखोंके आँसू लहमें-भरमें अग्नि-शिखामें परिणत हो जाते हैं।]

---

* मैं आशा करता हूँ कि इसके लिए तुम्हारे पास लाइसेन्स है।

तारादास—(षोड़शीकी ओर कठोर दृष्टिसे देखते हुए गरजकर) जाना है तो, मैं अकेला ही जाऊँगा। फिर इसका मुँह देखूँगा,—फिर इसको घरमें घुसने दूँगा, आप समझते हैं?—

इन्स्पेक्टर—(हँसकर) तुम्हारी तबीयत, तुम मुँह न देखो,—कोई तुम्हें सिरकी कसम दिलाने न आयेगा, महाराज। मगर जिसका घर है उसे घरमें न घुसने देकर कोई नई आफत मोल न ले लेना।

तारादास—(उछलकर) घर किसका है? घर मेरा है। मैंने ही इसे भैरवी बनाया है, मैं ही इसे निकाल बाहर करूँगा। चाभी सबकी इसी तारादासके हाथमें है। (ज़ोरसे अपनी छाती ठोककर) नहीं तो कौन है यह, जानते हैं? सुनेंगे इसकी माकी—

इन्स्पेक्टर—(उसे रोककर) ठहरो, महाराज ठहरो, गुस्सेमें आकर पुलिसके सामने सब बातें नहीं कह डालनी चाहिए,—इससे और आफतमें फँसना पड़ता है। (षोड़शीके प्रति) तुम जाना चाहती हो तो हम लोग तुम्हें सुरक्षित घर पहुँचा दे सकते हैं। चलो, अब देर मत करो।

[षोड़शी नीचेको निगाह किये चुपचाप खड़ी रहती है और गरदन हिलाकर जता देती है—नहीं।]

सब-इन्स्पेक्टर—(मुसकराकर) शायद अभी जानेमें देर है, न?

षोड़शी—(मुँह उठाकर इन्स्पेक्टरकी ओर देखकर) हाँ, आप लोग जाइए, मेरे जानेमें अभी देर है।

तारादास—(उन्मत्त-सा होकर) देर है? हरामज़ादी, तुझे अगर मार न डाला तो मैं मनोहर चक्रवर्तीका लड़का नहीं!

(उछलकर षोड़शीको मारनेके लिए लपकता है)

इन्स्पेक्टर—(उसे पकड़कर डाँटते हुए) फिर अगर ज़्यादती की, ऊधम मचाया, तो तुम्हें थानेमें ले जाऊँगा। चलो, भले आदमीकी तरह घर चलो।

[तारादासको खींचते हुए इन्स्पेक्टर तथा अन्य सब पुलिस-कर्मचारी प्रस्थान करते हैं। पीछेसे एककौड़ी भी दबे पाँव बाहर निकल जाता है। दूरसे तारादासकी गर्जना और गाली-गलौज क्षीणसे क्षीणतर होती सुनाई देती है।]

जीवानन्द—(इशारेसे षोड़शीको और भी अपने पास बुलाकर) तुम इन लोगोंके साथ गई क्यों नहीं?

षोड़शी—इन लोगोंके साथ तो मैं आई नहीं थी।

जीवानन्द—(कुछ क्षणोंतक नीरव रहकर) तुम्हारी सम्पत्तिकी छूटपट्टी लिख देनेमें दो-चार दिनकी देर होगी, मगर, रुपये क्या तुम आज ही ले जाओगी ?

षोड़शी—दे दीजिए, ले जाऊँगी।

जीवानन्द—(बिस्तरके नीचेसे नोटोंकी एक गड्डी निकाल कर उन्हें गिनते हुए षोड़शीके मुँहकी तरफ बार बार देखता हुआ जरा हँसकर कहता है—) मुझे किसी बातमें शरम नहीं आती, मगर आज मुझे भी इन्हें तुम्हारे हाथमें देते हुए संकोच-सा मालूम होता है।

षोड़शी—(शान्त नम्र कंठसे) लेकिन इन्हें देनेकी ही तो बात थी।

जीवानन्द—बात कुछ भी रही हो षोड़शी, मुझे बचानेमें तुमने जो कुछ खोया है, उसकी कीमत रुपयोंसे लगा रहा हूँ—इसकी अपेक्षा तो मेरा न बचना ही अच्छा था।

षोड़शी—(जीवानन्दके मुँहकी ओर एकटक देखकर) पर औरतोंकी कीमत तो आप हमेशा इन्हींसे लगाते आये हैं ! (जीवानन्द निरुत्तर रह जाता है और कुछ देर बाद फिर कहती है–) अच्छी बात है, आज अगर आपका वह सिद्धान्त बदल गया हो तो रुपये न हो रख ही दीजिए, आपको कुछ भी न देना होगा। लेकिन, मुझे क्या आप सचमुच ही नहीं पहचान सके ? अच्छी तरह गौर करके देखिए तो जरा ?

जीवानन्द—(चुपचाप देर तक निष्पलक दृष्टिसे देखकर, बादमें धीरे धीरे सिर हिलाकर) शायद पहचान सका हूँ। बचपनमें तुम्हारा नाम क्या अलका था ?

षोड़शी—(सारा चेहरा चमक उठता है) मेरा नाम तो षोड़शी है। किसी भैरवीका दशमहाविद्याओंके नामके सिवा और कोई नाम नहीं होता। पर अलकाकी आपको याद है ?

जीवानन्द—(निरुत्सुक कण्ठसे) कुछ कुछ याद तो है। तुम्हारी माके होटलमें कभी कभी खाने जाया करता था। तब तुम छोटी थीं। मगर मुझे तो तुमने आसानीसे पहचान लिया ?

षोड़शी—आसानीसे न सही, पर पहचान लिया है। अलकाकी माकी याद है आपको ?

जीवानन्द—है। वे जीवित हैं ?

षोड़शी—नहीं, करीब दस वर्ष हुए उन्हें काशी-लाभ हो चुका। आपको वे बहुत चाहती थीं न ?

जीवानन्द—(उद्वेगके साथ) हाँ। एक बार विपत्तिके समय उनसे सौ रुपये उधार लिये थे, उन्हें शायद मैं चुका नहीं सका।

षोड़शी—हाँ, नहीं चुका सके। लेकिन आप इसके लिए मनमें किसी तरहका क्षोभ न रक्खें। कारण, अलकाकी माने वे रुपये आपको कर्जके तौरपर नहीं दिये थे, दामादको दहेजके तौरपर दिये थे। (कुछ देर चुप रहकर) कोशिश करनेपर यह भी याद पड़ सकता है कि वह दिन भी ठीक इसी तरहका विपत्तिका दिन था। आज षोड़शीका ऋण ही बड़ा भारी मालूम होता है, लेकिन, उस दिन छोटी-सी अलकाकी कुलटा माका कर्ज भी कम भारी नहीं था, चौधरी साहब !

जीवानन्द—ऐसा ही समझ सकता अगर वे उन थोड़ेसे रुपयोंके लिए अपनी लड़कीसे ब्याह करनेको मुझे मजबूर न करतीं।

षोड़शी—ब्याह करनेके लिए उन्होंने मजबूर नहीं किया था, बल्कि आपने ही किया था। पर, खैर, जाने दीजिए इस गलीज आलोचनाको। आपने ब्याह तो किया नहीं था,—एक मज़ाक़ किया था। कन्या-दानके बाद ही आप ऐसे लापता हुए कि उसके बाद शायद आज ही यह पहली मुलाकात है।

जीवानन्द—मगर उसके बाद तो तुम्हारा सचमुचका ब्याह भी हो चुका है,—सुना है।

षोड़शी—इसके मानी हैं दूसरे किसीके साथ ? यही न ? पर निरुपाय बालिकाके भाग्यमें यह विडम्बना अगर हुई भी हो, तो भी तो आपके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

जीवानन्द—न सही, मगर तुम्हारी मा जानती थीं, तुम्हें सिर्फ तुम्हारे बापके हाथसे अलग रखनेके लिए ही उन्होंने कोई एक—

षोड़शी—ब्याहकी लकीर खींच दी थी ? हो सकता है। अलकाकी मा भी जीवित नहीं, और मैं ही अलका हूँ या नहीं, इतने दिनों बाद इस विषयकी दुश्चिन्ता करनेकी भी आपको ज़रूरत नहीं।

जीवानन्द—(कुछ देर सिर झुकाये चुप रहनेके बाद) लेकिन, मान लो, असल बात अगर तुम सबके सामने प्रकट कर दो, तो—

षोड़शी—असल बात कौन-सी ? ब्याहकी बात ? लेकिन वही तो झूठ है। इसके अलावा वह समस्या अलकाकी है, मेरी नहीं। सारी रात यहाँ बिता जानेके बाद वह कहानी सुनानेसे भी षोड़शीके सर्वनाशकी मात्रा रत्ती-भर कम न होगी।

जीवानन्द—(कुछ क्षण नीरव रहकर) षोड़शी, आज मैं इतना नीचे उतर गया हूँ कि गृहस्थकी कुल-वधूकी दुहाई देनेपर तुम मन ही मन हँसोगी, मगर उस दिन अलकाको ब्याहके उसे बीजगाँवके जमींदार-वंशकी कुल-वधूके तौरपर समाजके सरपर लाद देना क्या अच्छा काम होता ?

षोड़शी—सो तो मैं ठीक नहीं जानती; लेकिन, सच्चा काम होता, यह मैं जानती हूँ। पर मैं झूठमूठ ही बक रही हूँ। अब ये सब बातें आपके सामने कहना व्यर्थ है। मैं जाती हूँ,—कोई चीज़ देनेकी कोशिश करके अब आप और ज़्यादा मेरा अपमान न कीजिएगा।

जीवानन्द—(एककौड़ीको घुसते देख, उसके प्रति) एककौड़ी, तुम्हारे यहाँ कोई डाक्टर हैं ? एक बार खबर भेजकर बुलवा सकते हो ? वे जो चाहेंगे वही दिया जायगा।

एककौड़ी—डाक्टर हैं क्यों नहीं हुजूर,—हमारे यहाँ वल्लभ डाक्टरकी खूब चलती है, हाथमें जस भी खूब है। (षोड़शीकी तरफ देखने लगता है।)

जीवानन्द—(व्यग्र-कण्ठसे) उन्हें बुलवाओ एककौड़ी, अब एक मिनटकी भी देर मत करो।

एककौड़ी—मैं खुद ही जाता हूँ। लेकिन हुजूरको अकेला—

जीवानन्द—(दुःसह दर्दके मारे दूसरे ही क्षण चेहरा फक पड़ जाता है और वह औंधा पड़ रहता है) ओऽऽफ्, अब नहीं सहा जाता !

षोड़शी—तुम वल्लभ डाक्टरको ले आओ एककौड़ी, यहाँ जो कुछ करना होगा, मैं कर लूँगी।

[एककौड़ी घबराहटके साथ बाहर चला जाता है।]

जीवानन्द—(कुछ देर तक औंधे पड़े रहनेके बाद मुँह उठाकर) डाक्टर नहीं आया ? कितनी दूर रहता है, मालूम है ?

षोड़शी—पास ही रहते हैं,—मगर तीन-ही-चार मिनटमें थोड़े ही आ सकते हैं।

जीवानन्द—अभी कुल तीन ही चार मिनट हुए हैं ? मैंने सोचा, आधा घण्टा हुआ होगा,— या इससे भी अधिक देरसे एककौड़ी उन्हें बुलाने गया है। (औंधा पड़ रहता है) हो सकता है कि वे भी डरके मारे यहाँ न आवें, अलका !

(उसके कण्ठस्वर और आँखोंकी दृष्टिमें निराशाकी सीमा नहीं रहती है।)

षोड़शी—(कुछ देर चुप रहकर, स्निग्ध स्वरमें) डाक्टर आयेंगे क्यों नहीं !

जीवानन्द—शायद मैं अब बचूँगा नहीं। मुझे साँस लेनेमें भी तकलीफ हो रही है। मालूम होता है, दुनियामें अब हवा रही ही नहीं।

षोड़शी—आपको क्या बहुत कष्ट हो रहा है ?

जीवानन्द—हूँ। अलका, मुझे तुम क्षमा करो। (जरा ठहरकर) ईश्वर या भगवानको मानता नहीं,—इसकी जरूरत भी नहीं पड़ी। पर थोड़ी ही देर पहले मैं मन ही मन उन्हें पुकार रहा था। ज़िन्दगीमें मैंने बहुत पाप किये हैं, जिनका कोई ओर-छोर नहीं। आज रह रह कर बार बार यही खयाल आ रहा है कि सब कर्जा सिरपर लादे जाना पड़ेगा। (क्षणभर ठहरकर) मनुष्य अमर नहीं है, और मरनेकी उमरपर भी किसीने निशान लगाकर नहीं रख छोड़ा,—पर यह दर्द अब मुझसे नहीं सहा जाता—ओऽऽफ्,—मइया !

[दर्दकी तीव्रतासे सारा शरीर ऐंठने-सा लगता है। षोड़शी जरा इतस्ततः करके बिछौनेके पास बैठ जाती है और अपने आँचलसे उसके माथेका पसीना पोंछकर, पंखाके अभावमें आँचलहीसे हवा करने लगती है। जीवानन्द कोई बात नहीं कहता, सिर्फ उसका दाहना हाथ लेकर अपनी गोदमें रख लेता है।]

जीवानन्द—(क्षण-भर बाद) अलका,—

षोड़शी—आप मुझे षोड़शी कहके पुकारा करें।

जीवानन्द—अब क्या अलका नहीं हो सकतीं ?

षोड़शी—नहीं।

जीवानन्द—किसी दिन किसी भी कारणसे क्या—

षोड़शी—आप और कोई बात करिए। (जीवानन्द चुप रहता है। क्षण-भर बाद—) तकलीफ क्या जरा भी कम नहीं हुई ?

जीवानन्द—(गरदन हिलाकर) शायद जरा कम हुई है। अच्छा, अगर मैं बच गया तो क्या तुम्हारा कोई उपकार नहीं कर सकता ?

षोड़शी—नहीं, मैं संन्यासिनी हूँ,—मेरा निजी उपकार करना किसी तरह सम्भव नहीं।

जीवानन्द—अच्छा, ऐसा क्या कुछ है ही नहीं जिससे संन्यासिनी भी प्रसन्न हो सके?

षोड़शी—सो शायद है, पर उसके लिए आप क्यों आकुल हो रहे हैं?

जीवानन्द—(जरा क्षीण हँसी हँसकर) मुझमें बहुतेरे दोष हैं; पर यह दोष तो आज तक किसीने मुझे नहीं लगाया कि मैं पराये उपकारके लिए आकुल हो जाता हूँ। इसके सिवा, अभी कह रहा हूँ इसलिए अच्छा हो जानेपर भी यही कहूँगा, इसका भी कोई निश्चय नहीं,—यही तो जान पड़ता है! यही तो जान पड़ता है! सारी ज़िन्दगीमें इसके सिवा और शायद मेरा कुछ है ही नहीं।

[षोड़शी चुपचाप बैठी उसके माथेका पसीना पोंछने लगती है।]

जीवानन्द—(सहसा उसका हाथ पकड़कर) संन्यासिनीको क्या सुख-दुःख नहीं होता? वह जिससे खुश हो सके, दुनियामें ऐसी कोई चीज है ही नहीं?

षोड़शी—परन्तु वह तो आपके हाथकी बात नहीं।

जीवानन्द—जो आदमीके हाथकी बात हो, ऐसी कोई बात?

षोड़शी—सो है। अच्छे होकर अगर किसी दिन आप पूछेंगे तो उसका जवाब दूँगी।

जीवानन्द—(उसके हाथको छातीके पास ले जाकर) नहीं, नहीं, अच्छे होनेपर नहीं,—इस कठिन बीमारीकी हालतमें ही मुझे बताओ! आदमीको मैंने बहुत सताया है, आज अपने दुःखके समय पराये दुःख, पराई आशाकी बात जरा सुन लूँ। अपने दुःखकी कोई सद्गति तो हो!

[बाहर पैरोंकी आहट सुनाई देती है। षोड़शी अपना हाथ धीरे-से अलग कर लेती है।]

षोड़शी—डाक्टर साहब शायद आ गये!

(डाक्टर और एककौड़ीका प्रवेश)

[डाक्टर साहब षोड़शीको देखकर एकबारगी आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। पर बिना कुछ बोले-चाले चुपचाप रोगीके पास आकर रोगकी परीक्षा करने लगते हैं। षोड़शी इसी समय चली जाती है।]

एककौड़ी—अगर अच्छा कर सके डाक्टर साहब, तो इनामकी बात तो जाने दीजिए,—हम सभी आपके खरीदे हुए गुलाम बने रहेंगे।

डाक्टर—(परीक्षा समाप्त करके) बदपरहेजी कर-करके बीमारी पैदा कर ली है। सावधानीसे काम न लिया गया तो पिल्ही या लीवर पक सकता है, और उसमें खतरा है। पर अभीसे सावधान हो जानेसे नहीं भी पक सकता है, और तब खतरा भी कम है। पर, इतना निश्चित है कि दवा खाना जरूरी है।

जीवानन्द—इस हालतमें कलकत्ता जाना सम्भव है या नहीं, सो बता सकते हैं ?

डाक्टर—अगर जा सकें तो सम्भव है, नहीं तो किसी भी तरह सम्भव नहीं।

जीवानन्द—यहाँ रहनेसे आराम हो सकता है या नहीं, बता सकते हैं ?

डाक्टर—(विज्ञकी तरह सिर हिलाकर) जी नहीं हुजूर, सो तो नहीं कह सकता। पर हाँ, यह निश्चय है कि यहाँ रहकर भी अच्छे हो सकते हैं, और संभव है कलकत्ता जाकर भी आराम न हो।

एककौड़ी—हुजूरका दर्द—

डाक्टर—ऐसा दर्द अचानक बढ़ जाया करता है और फिर अचानक कम हो जाता है। कल सबेरे ही हुजूर स्वस्थ हो जा सकते हैं। पर यह निश्चित है कि मुझे फिर एक बार आना पड़ेगा।

[एककौड़ीसे ‘ विजिट ’ लेकर डाक्टर चले जाते हैं।]

जीवानन्द—क्या होगा एककौड़ी ?

एककौड़ी—डरकी क्या बात है हुजूर, दवा अभी आती है। वल्लभ डाक्टरका एक शीशी मिक्स्चर पीते ही सब अच्छा हो जायगा।

जीवानन्द—(षोड़शी जिस दरवाज़ेसे जरा पहले निकल गई थी, उस तरफ उत्सुक दृष्टिसे देखकर) उनको जरा भेजकर—

[एककौड़ी बाहर जाकर क्षण-भर बाद फिर भीतर आ जाता है।]

एककौड़ी—वे नहीं हैं, घर चली गई हुजूर। सबेरा होनेको है।

जीवानन्द—(व्यग्र व्याकुल स्वरमें) मुझे बिना जताये ही न जायेंगी। ऐसा हो ही नहीं सकता, एककौड़ी।

एककौड़ी—हुजूर, वे डाक्टर साहबके आनेके बाद ही चली गई हैं। बाहर सरदार बैठा है, उसने देखा है, भैरवीजी सीधी घरको चली गईं।

जीवानन्द—(कुछ देर तक आँखोंकी सीधमें देखकर) तो बत्ती बुताकर तुम भी चले जाओ एककौड़ी। मैं जरा सोऊँगा।

[एककौड़ी बत्ती बुता देता है। जीवानन्द वेदना-म्लान मुखसे करवट लेकर सो रहता है। बत्ती बुताते ही पौ-फटनेकी धुँधली आभा खिड़कीमेंसे भीतर आ फैलती है।]

तृतीय दृश्य

चण्डी-मन्दिरका रास्ता। दोपहरसे कुछ पहले।

[एक भिखारी और उसकी लड़कीका प्रवेश]

लड़की—अब तो चला नहीं जाता चाचा, माताका मन्दिर और कितनी दूर है?

भिखारी—वह रहा, देख न, आगे आगे कितने लोग चले जा रहे हैं बिटिया, शायद अब ज़्यादा दूर नहीं है।

लड़की—कोई, गीत गाता हुआ आ रहा है चाचा, उससे पूछो न?

[गीत गाते हुए दूसरे भिखारीका प्रवेश]

भगवंत भजन क्यों भूला रे! भगवंत भजन क्यों भूला रे!
यह संसार रैनका सपना, तन-धन बारि-बबूला रे,
भगवंत भजन क्यों भूला रे!

पहला भिखारी—माताका मन्दिर और कितनी दूर है बाबा?

दूसरा भिखारी—वह रहा—

इस जोबनका कौन भरोसा, पावकमें तृन-पूला रे,
काल, कुदाल लिये सिर ठाढ़ो, क्या समझै मन फूला रे!
स्वारथ साधै पाँच पाँव तू, परमारथको लूला रे,
कहु कैसे सुख पैहै प्रानी, काम करै दुख-मूला रे।
भगवंत भजन क्यों भूला रे!

पहला भिखारी—क्यों जी?

दूसरा भिखारी—क्या है जी क्या?

पहला भिखारी—विष्णुगाँवसे आ रहा हूँ भाई, रास्ता जैसे खतम ही नहीं होना चाहता। सुना है, जनार्दन रायके नातीकी कल्याण-कामनासे आज माकी

पूजा होगी। ब्राह्मण-संन्यासी-भिखारी जो जो-कुछ चाहेंगे, राय साहब उनको वही--

दूसरा भिखारी—राय साहब नहीं, रायसाहब नहीं, उनके दामाद। पच्छिम-देसके बारिस्टर हैं, राजा ही समझो। दो सरवा-भरके चूड़ा-दही-मीठा, एक सरवा सन्देस-बरफी, और आठ आने पैसे नगद—

भिखारीकी लड़की—(अपने बापसे) क्यों चाचा, तुमने तो कहा था कि लड़कियोंके लिए एक एक लाल किनारीकी धोती देंगे ?

दूसरा भिखारी—देंगे, देंगे। जो जो कुछ माँगेगा, मिलेगा। राय साहबकी लड़की हैमवती किसीसे 'ना' करना तो जानती ही नहीं।

मोह-पिसाच छल्यो, मति मारै निज कर कंध बसूला रे,
भज भगवंत-नाम तू 'भूधर', दे दुरमति-सिर धूला रे,
भगवंत भजन क्यों भूला रे! भगवंत भजन क्यों भूला रे!

भिखारीकी लड़की—चाचा, माँगनेसे तुम्हें भी मिल जायगी एक धोती न ?

दूसरा भिखारी—मिलेगी, मिलेगी, जरा पाँव बढ़ाकर चले जाओ—

भगवंत भजन क्यों भूला रे, भगवंत भजन क्यों भूला रे!
यह संसार रैनका सपना, तन-धन बारि-बबूला रे!
भगवंत भजन क्यों भूला रे! ×

[सबका प्रस्थान।]

[बात करते करते षोड़शी और फकीर साहबका प्रवेश।]

× मूल गीतका छायानुवाद भी यहाँ दिया जाता है:—

पानेका जब समय मिला था ओरे मूरख मन,
मरन-खेलके नशे बीच तू रहा विगत-चेतन।
तब थे मानिक, हीरे मोती, राह किनारे पड़े हुए,
अब डूबे दिन बीते वे सब, अन्धकारमें भरे हुए।
अब झूठी है ढूँढ़ा-ढूँढ़ी झूठे आँसू-कन,
कहाँ मिलेगा अब वह तोकों—
अतल तलेमें डूब गया जो, शेष साधना-धन,
पानेका जब समय मिला था ओरे मूरख मन,
मरन-खेलके नशे बीच तू रहा विगत-चेतन।

फकीर—जो बातें मेरे सुननेमें आई हैं बेटी, उन्हें सुनकर मुझसे चुपचाप न ठहरा गया, चला आया। मगर, मेरी तो कुछ समझमें ही नहीं आता षोड़शी, उस दिन किस लिए तुमने उस आदमीको इस तरह बचा दिया ?

षोड़शी—उस बीमार आदमीको क्या जेल भिजवाना ही उचित होता फकीर साहब ?

फकीर—इस बातका विचार करनेका भार तो तुमपर नहीं था बेटी, यह काम राजाका था,— इसीसे उसकी जेलोंमें भी अस्पताल है, बीमार अपराधियोंका वहाँ इलाज भी किया जाता है। पर सिर्फ यही अगर कारण हो बचानेका, तो अन्याय किया है तुमने, यह कहना ही पड़ेगा।

[षोड़शी चुपचाप फकीरके मुँहकी ओर देखती रह जाती है।]

फकीर—जो होना था सो हो गया; पर आइन्दाके लिए यह गलती तुम्हें सुधार लेनी होगी षोड़शी।

षोड़शी—इसके मानी ?

फकीर—उस आदमीके अपराधों और अत्याचारोंकी कोई सीमा नहीं, सो तो तुम जानती ही हो। उसे दण्ड मिलना ज़रूरी है।

षोड़शी—(क्षण-भर स्तब्ध रहकर) मैं सब-कुछ जानती हूँ। उसे दण्ड देना ही शायद आप लोगोंका कर्तव्य हो, पर मेरी अपनी बात किसीसे कहनेकी नहीं। उसके विरुद्ध गवाही मैं कभी न दे सकूँगी।

फकीर—उस दिन नहीं दे सकीं, ठीक है, पर क्या भविष्यमें भी न दे सकोगी ?

षोड़शी—नहीं।

फकीर—आत्म-रक्षाके लिए भी नहीं ?

षोड़शी—नहीं, आत्म-रक्षाके लिए भी नहीं।

फकीर—आश्चर्य है ! (कुछ देर चुप रहकर) तुम तो अभी मन्दिर जा रही हो षोड़शी, तो मैं अब जाता हूँ।

[षोड़शी झुककर नमस्कार करती है। फकीर चले जाते हैं। अन्यमनस्ककी तरह षोड़शी जा ही रही थी कि इतनेमें सागर बड़ी तेजीसे आकर उसके सामने खड़ा हो जाता है।]

सागर—क्यों मा, तुम्हारे पिता तारादास महाराजने, सुना है, सब कमरोंमें ताले लगाकर तुम्हें घरसे निकाल दिया है? उन सब लोगोंने मिलकर शायद यह तय किया है कि तुम्हें चण्डी-मन्दिरसे विदा करके नई भैरवी लायेंगे? ऐसा नहीं होनेका मा, सागर सरदारके जीते-जी ऐसा नहीं हो सकता, कहे देता हूँ।

षोड़शी—यह खबर तैंने कहाँ सुनी सागर?

सागर—सुनी है मा, अभी अभी सुनते ही तुम्हारे पास जानने दौड़ा आया हूँ। तुम औरत ठहरी मा, तुम्हें अगर अकेला पाकर जमींदारके आदमी घरसे पकड़ ले गये तो क्या वह तुम्हारा कसूर है? कसूर है सारे गाँवका। कसूर है इस सागरका जो अपने रिश्तेदारोंके यहाँ जाकर आनन्दमें गरक हो गया था,—अपनी माकी खबर ही नहीं रख सका। कसूर है इसके चाचा हरीहर सरदारका जो गावमें मौजूद रहते हुए भी इतने बड़े अपमानका बदला न ले सका।

षोड़शी—ऐसा अगर सचमुच हुआ होता सागर, तो तुम दो जने चचा-भतीजे मौजूद रहकर ही क्या कर लेते, बताओ तो? जमींदारके कितने आदमी हैं, जरा सोच तो सही!

सागर—सो सोच लिया है मा! उनके बहुत आदमी हैं, बहुत सिपाही-पियादे हैं। गरीब होनेके कारण हम लोगोंको सतानेमें भी वे कोई कोर-कसर नहीं रखते! मगर दें हमें दुःख, आखिर हम लोग छोटे जो ठहरे। मगर तुम्हारा हुकम मिल जाय, तो मा भैरवीकी देहपर हाथ लगानेका बदला एक दफे जरूर चुका सकते हैं। गलेमें रस्सी बाँधके घसीट लाकर उन हुजूरको ही रात-ही-रातमें अपनी माके सामने बलि चढ़ा सकते हैं मा, कोई साला न रोक सकेगा।

षोड़शी—(सिहरकर) कहता क्या है रे सागर! तुम लोग क्या इतने निर्दयी, इतने भयङ्कर हो सकते हो? इतनी-सी बातके लिए एक आदमीको जानसे मारनेको जी चाहता है तुम लोगोंका?

सागर—इतनी-सी बात? तुम अपनी देहपर हाथ लगानेको इतनी सी बात कहती हो मा? तारादास महाराजको भी हम लोग माफ कर सकते हैं, जनार्दन रायको भी शायद कर दें, पर मौका पाकर जमींदारको हम लोग आसानीसे नहीं छोड़नेके। (क्षण-भर ठहरकर) मगर वे सब लोग कहा-सुनी कर रहे हैं मा, कि तुम्हींने उनको उस रात हाकिमके हाथसे बचा दिया है और

कहते हैं कि तुम्हें कोई पकड़के नहीं ले गया, तुम खुद ही अपनी इच्छासे गई थीं ?

षोड़शी—ऐसा भी तो हो सकता है सागर, मैंने सच बात ही कही थी।

सागर—इसीसे तो बड़ा भारी खटका लग गया है मा, तुम्हारे मुँहसे तो कभी झूठ बात निकलती नहीं। तो फिर यह क्या बात है ! लेकिन खैर, वह चाहे कुछ हो, गाँव-भर चाहे जो-कुछ कहता फिरे, हम कई घर छोटी जातवाले तुम्हींको अपनी मा समझते हैं। अगर चण्डीगढ़ छोड़के चली जाओगी मा, तो हम लोग भी तुम्हारे साथ लग लेंगे, मगर जानेसे पहले एक बार जता जायँगे कि कौन लोग गये ! (जल्दीसे प्रस्थान)

षोड़शी—सागर, एक बात तुझसे कह नहीं सकी बेटा, तुम लोगोंकी जुम्मेवारी शायद अब मै उठा नहीं सकूँगी।

[एककौड़ीका प्रवेश]

षोड़शी—कौन, एककौड़ी ?

एककौड़ी—(अदबके साथ). आपहीके पास आया हूँ। हुजूरने आपको एक बार याद किया है।

षोड़शी—कहाँ ?

एककौड़ी—कचहरीमे बैठे रिआयाकी शिकायतें सुन रहे हैं। अगर आज्ञा दें तो पालकी लाने भेज दूँ।

षोड़शी—पालकी ? यह उनका ही प्रस्ताव है या तुम्हारी बुद्धिमानी है एककौड़ी ?

एककौड़ी—जी नहीं, मैं तो नौकर हूँ, यह स्वयं हुजूरकी आज्ञा है।

षोड़शी—(हँसकर) तुम्हारे हुजूरमें विवेचना-बुद्धि है यह मैं मानती हूँ, मगर फिलहाल पालकीपर सवार होनेकी फुरसत नहीं है मुझे। हुजूरसे जाकर कहो कि मुझे बहुत काम है।

एककौड़ी—उस छाक, या कल सबेरे भी क्या समय न मिलेगा ?

षोड़शी—नहीं।

एककौड़ी—मगर मिलता तो अच्छा होता। और भी बहुत-सी प्रजाओंकी शिकायतें हैं न, इसीसे।

षोड़शी—(कठोर स्वरमें) उनसे कह देना एककौड़ी,—न्याय करनेकी

बुद्धि उनमें हो तो वे अपनी प्रजाका न्याय करें। मैं उनकी प्रजा नहीं हूँ, मेरा न्याय करनेके लिए राजाकी अदालत मौजूद है।

[षोड़शी तेजीसे चली जाती है और एककौड़ी कुछ देर तक स्तब्ध-भावसे खड़ा रहकर धीरे धीरे चल देता है। दूसरी ओरसे हैमवती और निर्मल प्रवेश करते हैं। हैमवतीके हाथमें पूजाका सामान है।]

हैमवती—जिस दयालु आदमीने तुम्हें उस दिन अँधेरी रातमें घर पहुँचा दिया था, सच सच बताओ तो वह कौन था? उसे मैंने पहचान लिया है।

निर्मल—पहचान लिया? कौन हैं बताओ तो वे?

हैमवती—हमारे यहाँकी भैरवी। मगर, तुम्हें वे मिल कहाँसे गईं, सिर्फ इतना ही समझमें नहीं आता।

निर्मल—नहीं आता? मिली थीं बहुत दूर। तुम्हारे फकीर साहबके सम्बन्धमें बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें सुनकर उन्हें देखनेके लिए बड़ा कुतूहल हुआ था। ढूँढता हुआ पहुँच गया उनके पास। नदी-किनारे आश्रम है। वहाँ जाकर देखा,—तुम्हारी भैरवी बैठी है।

हैमवती—इसका कारण है, फकीरको वे गुरुकी तरह मानतीं और श्रद्धा-भक्ति करती हैं। मगर सचमुच ही क्या वे तुम्हें अँधेरेमें हाथ पकड़के घर पहुँचा गई थीं?

निर्मल—सचमुच, यही बात है। जैसे ही उन्होंने निश्चय समझ लिया कि ऐसे आँधी-मेहमें भयंकर अन्धकार-पूर्ण अनजान रास्तेमें मैं अन्धेके समान हूँ, वैसे ही, स्त्री होते हुए भी, उन्होंने बिना किसी संकोचके हाथ बढ़ाकर कहा, 'मेरा हाथ पकड़के चले आइए।' पर दूसरेके लिए यह काम तुमसे न होता, हैम!

हैमवती—नहीं।

निर्मल—सो मैं जानता हूँ। (कुछ देर ठहरकर) देखो हैम, यह सच है कि तुम्हारी देवीकी इस भैरवीको मैं पहचान नहीं सका, पर इतना निश्चित समझ गया हूँ कि इनके विषयमें न्याय-विचार करनेके लिए साधारण नियम लागू नहीं हो सकते। या तो सतीत्व वस्तु इनके लिए बिलकुल ही फालतू चीज़ है,—तुम लोगोंकी तरह उसके यथार्थ रूपको वे नहीं जानतीं, और या फिर, सुनाम-दुर्नाम इन्हें स्पर्श तक नहीं कर सकता।

हैमवती—तुम क्या उस दिनकी ज़मींदारवाली घटनाका खयाल करके ये सब बातें कह रहे हो?

निर्मल—कोई आश्चर्य नहीं । शास्त्रमें कहा है, सात कदम एक साथ चलनेसे मित्रताका सम्बन्ध हो जाता है । मैंने तो इतना लम्बा रास्ता, दुर्भेद्य अन्धकारमें, एक मात्र उन्हींके भरोसेपर धीरे धीरे एक साथ तय किया था, एक एक करके बहुत-से प्रश्न भी उनसे पूछे थे; परन्तु, पहले भी वे जिस रहस्यमें छिपी हुई थीं, बादमें भी ठीक उसी तरह रहस्यमें छिपी रहीं,—उनकी कोई थाह ही नहीं मिली ।

हैमवती—तुम्हारी जिरह भी नहीं मानी, और मित्रता भी मंजूर नहीं की ?

निर्मल—नहीं जी नहीं, कुछ भी नहीं ।

हैमवती—(हँसकर) जरा भी नहीं ? तुम्हारी तरफसे भी नहीं ?

निर्मल—इतनी बड़ी बात क्या सिर्फ झाँसा देकर ही निकलवा लेना चाहती हो ? पर अपनेको पहचाननेमें भी तो देरी लगती है हैम !

हैमवती—देर लगने दो, फिर भी पुरुष पहचान जाते हैं । पर औरतोंपर तो ऐसा अभिशाप है कि मरते दम तक उनकी ज़िन्दगी अपनी तकदीर समझनेमें ही बीत जाती है ।

निर्मल—(हैमवतीका हाथ पकड़कर) तुम क्या पागल हो गई हो हैम ! चलो, हम लोग जरा जल्दी चले चलें,—शायद पूजामें देर हो जायगी ।

[दोनोंका प्रस्थान ।]

चतुर्थ दृश्य

नाच–मन्दिर

[गढ़चण्डीका मन्दिर और उससे लगा हुआ प्रशस्त बरामदा । सामने लम्बी-चौड़ी चहारदीवारीसे वेष्टित प्राङ्गण । प्राङ्गणमें नाच-मन्दिरका कुछ अंश दिखाई पड़ता है । मन्दिरका द्वार खुला हुआ है । दक्षिणकी तरफ प्राङ्गणमें प्रवेश करनेका रास्ता है । प्रातःकालका समय है,—कोमल धूपका प्रकाश चारों ओर फैला हुआ है । मन्दिरके बरामदे और प्राङ्गणमें उपस्थित हैं जनार्दन राय, शिरोमणि महाराज, निर्मल वसु, षोड़शी, हैमवती तथा और भी कुछ स्त्री-पुरुष ।]

शिरोमणि—(षोड़शीसे) आज हैमवती अपने पुत्रके कल्याणके लिए जो पूजा करा रही हैं, उसमें तुम्हारा कोई अधिकार नहीं रहेगा,—उन्होंने अपनी

यह मनसा हम लोगोंपर जाहिर की है। उन्हें आशंका है कि तुम्हारे द्वारा उनका कार्य सुसिद्ध न होगा।

षोड़शी—(पाण्डर मुखसे)—अच्छी बात है, उनका काम जैसे सुसिद्ध हो, वे वैसा ही करें।

शिरोमणि—सिर्फ इतनी ही बात तो नहीं है! गाँवके हम सभी मुखिया आज इस स्थिर सिद्धान्तपर उपस्थित हुए हैं कि देवीका कार्य अब तुम्हारे द्वारा न होगा। माताकी भैरवी अब तुम्हें रखनेसे काम न चलेगा। कौन है, एक बार तारादास महाराजको बुलाना।

[एक आदमी बुलाने जाता है।]

षोड़शी—क्यों नहीं चलेगा?

एक व्यक्ति—सो तुम अपने पिताके मुँहसे ही सुन लोगी।

जनार्दन—आगामी चैत्र-संक्रान्तिपर नई भैरवीका अभिषेक होगा, हम लोगोंने तय कर लिया है।

[तारादास एक दस सालकी लड़कीको साथ लिये भीतर आते हैं।]

हैमवती—(तारादासकी ओर देखकर) जो-कुछ सुन रही हूँ पिताजी, उससे क्या उनकी बातको ही सत्य मान लेना होगा?

तारादास—क्यों नहीं मान लेना होगा, कहो?

हैमवती—(छोटी लड़कीकी तरफ इशारा करके) इसे जब वे तजबीज करके ले आये हैं, तब झूठ बोलना क्या उनके लिए इतना ही असम्भव है? इसके सिवा झूठ-सचकी तो परीक्षा कर लेनी चाहिए, पिताजी। इसमें इकतरफा तो फैसला नहीं किया जा सकता।

[सब कोई विस्मित होते हैं।]

शिरोमणि—(हलकी हँसीके साथ) बेटी बारिस्टरकी गृहिणी ठहरी न, इसीसे जिरह शुरू कर दी है। अच्छा, मैं रोके देता हूँ। (हैमवतीसे) यह देवीका मन्दिर है,—पीठस्थान है, पीठस्थान,—इस बातको तो मानती हो?

हैमवती—(गरदन हिलाकर) मानती क्यों नहीं!

शिरोमणि—अगर यही बात है, तो तारादास ब्राह्मण-सन्तान होकर क्या देवमन्दिरमें खड़े झूठ बोल सकते हैं, पगली? (कहकहा मारकर हँस पड़ते हैं।)

हैमवती—स्वयं आप भी तो वही हैं शिरोमणिजी! फिर भी इस देव-

मन्दिरमें खड़े खड़े ही तो आप झूठी बातोंकी वर्षा कर गये। मैंने एक बार भी नहीं कहा कि उनसे काम करानेसे मेरा काम सिद्ध न होगा !

[शिरोमणि हतबुद्धिसे रह जाते हैं।]

जनार्दन—(क्रुद्ध होकर तीखे गलेसे) कहा कैसे नहीं ?

हैमवती—नहीं पिताजी, नहीं कहा। कहना तो दूर रहा, यह बात मेरे मनमें भी नहीं आई। बल्कि, मैं तो उनसे ही पूजा कराऊँगी, इसमें चाहे मेरे लड़केका कल्याण हो या अकल्याण। (षोड़शीके प्रति) चलिए मन्दिरमें आप, हमारा समय निकला जा रहा है।

जनार्दन—(धैर्य खोकर अकस्मात् खड़े होकर भीषण कण्ठसे) हरगिज नहीं। अपने जीते-जी मैं उसे हरगिज मन्दिरमें न घुसने दूँगा। तारादास, कहो तो सबके सामने उसकी माकी बात ! सब सुन लें एक बार।

शिरोमणि—(साथ-साथ खड़े होकर) नहीं, तारादासको रहने दो। उनकी बातपर आपकी लड़की शायद विश्वास न करेगी, रायसाहब। वह खुद ही कहे। चण्डीकी तरफ मुँह करके वही अपनी माका हाल कह जाय। क्यों चटर्जी ? तुम्हारी क्या राय है भट्टाचार्य ? क्यों ? वह खुद ही कहे।

[षोड़शीका चेहरा फक पड़ जाता है।]

हैमवती—आप लोग इनका न्याय-विचार करना चाहते हैं तो खुद ही कीजिए; परन्तु, इनकी माकी बात इन्हींके मुँहसे कबूल करा लें, इतने बड़े अन्यायको मैं हरगिज न होने दूँगी। (षोड़शीके प्रति) चलिए आप मेरे साथ मन्दिरके भीतर—

षोड़शी—नहीं बहन, मैं पूजा नहीं करती; जो इस कामको नित्य करते हैं वे ही करें। मैं सिर्फ यहीं खड़ी खड़ी तुम्हारे लड़केको आशीर्वाद देती हूँ, वह चिरजीवी हो, नीरोग हो, मनुष्य बने। (पुजारीके प्रति) मगर, छोटे महाराजजी, तुम इधर-उधर क्यों कर रहे हो ? मेरा आदेश रहा, देवीकी पूजा यथारीति करके तुम अपना जो कुछ प्राप्य हो सो ले लेना। बाकी मन्दिरके भण्डारमें बन्द करके चाभी मुझे भेज देना। (हैमवतीके प्रति) मैं फिर आशीर्वाद दिये जाती हूँ, तुम्हारे लड़केका सर्वाङ्गीन कल्याण हो।

[षोड़शी प्राङ्गणसे बाहर चली जाती है और पुरोहित पूजा करनेके लिए मन्दिरके भीतर प्रवेश करता है।]

जनार्दन—(निर्मल और हैमवतीके प्रति) जाओ बेटी, तुम लोग भी पुजारी महाराजके साथ जाओ और ऐसा करो जिससे पूजा सुसम्पन्न हो जाय।

[निर्मल और हैमवती मन्दिरके भीतर प्रवेश करते हैं।]

जनार्दन—खैर जान बची, शिरोमणिजी महाराज, षोड्शी आप ही चली गई। छोकड़ीने जिदमें आकर मेरे दोहतेकी मानस-पूजा बिगाड़ नहीं दी, यही बहुत समझो।

शिरोमणि—यह तो होना ही था भाई साहब, माता महामायाकी मायाको क्या कोई रोक सकता है? उन्हींकी इच्छा जो ठहरी!

[यह कहकर और हाथ जोड़कर मन्दिरके लिए नमस्कार करते हैं।]

योगेन्द्र भट्टाचार्य—(गरदन उचकाकर देखता हुआ) ऐं, अरे ये तो स्वयं हुजूर आ रहे हैं!

[सबके सब त्रस्त और चकित हो उठते हैं। जीवानन्द और उनके पीछे पीछे कई एक पियादों और नौकर-चाकरोंका प्रवेश।]

शिरोमणि और जनार्दन राय—आइए, आइए, आइए! (कोई कोई नमस्कार करते हैं और बहुतसे प्रणाम।)

जनार्दन—मेरा परम सौभाग्य है कि आप पधारे हैं। आज मेरे दोहतेके कल्याणार्थ माताकी पूजा हो रही है।

जीवानन्द—अच्छा? इसीसे शायद बाहर इतने लोग इकट्ठे हो रहे हैं?

[जनार्दन विनयके साथ सिर झुका देते हैं।]

शिरोमणि—हुजूरकी तबीयत ठीक है न?

जीवानन्द—तबीयत? (हँसकर) हाँ, अच्छी ही है। इसीसे तो आज सहसा निकल पड़ा। देखा कि बहुत-से लोगोंके झुण्डके झुण्ड इधरको आ रहे हैं। मैं भी साथ हो लिया। भाग्य प्रसन्न था,—देवता, ब्राह्मण और साधु-संग तीनों ही भाग्यसे प्राप्त हो गये। पर, राय साहबको तो मैं जानता-पहचानता हूँ, आपको तो ठीक पहचान नहीं सका, महाराज?

जनार्दन—ये हैं सर्वेश्वर शिरोमणि। बड़े-बूढ़े प्राचीन निष्ठावान् ब्राह्मण हैं, गाँवके मुखिया ही समझिए।

जीवानन्द—अच्छा? ठीक है, ठीक है, बड़ा आनन्द हुआ। अच्छा तो यहींपर जरा बैठ न लिया जाय?

[बैठनेको उद्यत देखकर सब-कोई व्यस्त हो उठते हैं।]

शिरोमणि—(जोरसे चिल्लाकर) आसन, आसन, बैठनेके लिए आसन ले आओ कोई !

जीवानन्द—आप उतावले न होइए शिरोमणिजी, मैं अत्यन्त विनयी आदमी हूँ। मौका पड़ जानेपर रास्तेपर लेटनेमें भी संकोच नहीं करता, फिर यह तो मन्दिर है। ऐसे ही ठीक रहेगा।

(जीवानन्द बैठ जाते हैं।)

जनार्दन—एक गुरुतर कार्यके लिए आपके पास हम लोगोंने जानेका निश्चय किया था, सिर्फ आपकी तबीयत खराब होनेकी वजहसे ही नहीं जा सके।

जीवानन्द—गुरुतर कार्यके लिए ?

शिरोमणि—जी हाँ हुजूर, गुरुतर तो है ही। षोड़शी भैरवीको हम लोग बिलकुल नहीं चाहते।

जीवानन्द—चाहते नहीं ?

शिरोमणि—नहीं, हुजूर।

जीवानन्द—कुछ कुछ भनक मेरे कानों तक भी पहुँची है। भैरवीके विरुद्ध आप लोगोंकी शिकायत क्या है ?

(सब चुप रह जाते हैं।)

जीवानन्द—कहनेमें क्या आप लोगोंको करुणा मालूम हो रही है ?

जनार्दन—हुजूर सर्वज्ञ हैं, हम लोगोंकी शिकायत—

जीवानन्द—क्या शिकायत है ?

जनार्दन—हम गाँवके सोलहों-आने बड़े-छोटे सब एकत्र होकर—

जीवानन्द—(जरा हँसकर) सो तो देख ही रहा हूँ। (उँगलीसे इशारा करके) ये ही हैं न वे भैरवीके बाप तारादास महाराज ?

[तारादास कुछ बोले बिना नीचेको निगाह कर लेते हैं।]

शिरोमणि—(विनयके साथ) राजाके लिए प्रजा सन्तानके समान है,—वह दोष करनेपर भी सन्तान है, न करनेपर भी सन्तान है। और बात एक तरहसे इन्हींकी है। इनकी कन्या षोड़शीको, हम लोगोंने निश्चय कर लिया है कि, अब महादेवीकी भैरवी नहीं रखा जा सकता। मेरा निवेदन है कि हुजूर उसे देव-सेवाके कार्यसे अलग होनेका आदेश दे दें।

जीवानन्द—(चकित होकर) क्यों ? उनका अपराध ?

दो-तीन आदमी—(एक स्वरमें) बड़ा भारी अपराध है।

जीवानन्द—उन्होंने सहसा ऐसा क्या भयंकर दोष कर डाला रायसाहब, जिसके लिए उन्हें अलग करना जरूरी हो गया?

[जनार्दन शिरोमणिको जवाब देनेके लिए आँखोंसे इशारा करता है।]

जीवानन्द—नहीं नहीं, उन्होंने बड़ा पारिश्रम किया है, बूढ़े आदमीको अब और तकलीफ देनेकी जरूरत नहीं, बात क्या है, आप ही कह दीजिए।

जनार्दन—(आँखों और चेहरेपर दुबिधा और संकोचका भाव लाकर) ब्राह्मणकी लड़की ठहरी, यह आदेश मुझे न दीजिए।

जीवानन्द—गो-ब्राह्मणपर आपकी अचला भक्तिकी बात इधर किसीसे छिपी नहीं है। मगर, इतने ऊँच-नीच आदमियोंको लेकर जब कि आप कमर बाँध कर इस कामके लिए तुल पड़े हैं, तब बात जरूर बहुत गुरुतर है, इसका मुझे विश्वास हो गया है। पर उसे मैं आपहीके मुँहसे सुनना चाहता हूँ।

जनार्दन—(शिरोमणिके प्रति क्रुद्ध दृष्टि डालते हुए) हुजूर जब खुद ही सुनना चाहते हैं तो फिर डर किस बातका महाराज? निर्भय होकर कह न दीजिए।

शिरोमणि—(व्यस्त होकर) सच बातमें डर काहेका जनार्दन? तारादासकी लड़कीको अब हम लोग रक्खेंगे नहीं हुजूर, उसका चाल-चलन बहुत खराब हो गया है,—इतना आपको जताये देता हूँ।

[जीवानन्दका परिहाससे दीप्त प्रफुल्ल चेहरा अकस्मात् गम्भीर और कठोर हो उठता है।]

जीवानन्द—उनके चाल-चलनके खराब होनेकी खबर आप लोगोंको निश्चत रूपसे मालूम हो चुकी है?

[सब गरदन हिलाकर मंजूर करते हैं।]

जीवानन्द—इसीसे सच्चा न्याय पानेकी आशासे छाँट-छूँटकर एकबारगी भीष्मदेवके शरणापन्न हुए हैं रायसाहब?

शिरोमणि—आप देशके राजा है,—न्याय कहिए अन्याय कहिए, आपहीको करना होगा। हमें उसीको सिर-माथे अंगीकार करना पड़ेगा। साराका सारा चण्डीगढ़ तो आपहीका है।

जीवानन्द—(मुसकराकर) देखिए शिरोमणिजी, अति-विनयसे आप लोगोंको भी झुकनेकी कोई जरूरत नहीं, और अति-गौरवसे मुझे भी आसमानपर चढ़ानेकी आवश्यकता नहीं। मैं सिर्फ जानना चाहता हूँ कि यह दोषारोप क्या सच है ?

(अधिकांश लोग उत्तेजनासे चंचल हो उठते है।)

शिरोमणि—दोषारोप ? सच है या नहीं ?—अच्छा, हम लोग तो खैर गैर हैं,—मगर तारादास, तुम्हीं बताओ। राजद्वार है, यथाधर्म कहना—

(तारादास एक बार पीला फक और एक बार सुर्ख हो उठता है। जनार्दनकी क्रुद्ध एकाग्र दृष्टि छिद-छिदकर मानो उसे बार बार उकसा देती है। वह एक बार खाली घूंट भरकर और एक बार गलेकी जडता साफ करके अन्तमें जान हथेलीपर रखकर कहने लगता है।)

तारादास—हुजूर—

जीवानन्द—(हाथ उठाकर उसे रोकते हुए) इनके मुँहसे इनकी ही लड़कीके कलंककी बात मैं यथाधर्म कहनेपर भी नहीं सुनूँगा। बल्कि, आपमेंसे यदि कोई कह सके, तो 'यथाधर्म' कहे।

(नौकर पीछे ओटमें मौजूद है। वह टम्ब्लर भरकर ह्विस्की-सोडा मालिकके हाथमें थमा देता है। वे एक साँसमें गिलास खतम करके बेहराके हाथमें दे देते हैं।)

जीवानन्द—ओः, जान बची। आप लोगोंकी वाक्य-सुधा पीते पीते मारे प्यासके छाती तक सूखकर काठ हो गई थी।—पर, सब चुपचाप कैसे ? क्या हुआ आप लोगोंके 'यथाधर्म' का ?

[शिरोमणि नाकपर कपडा रख लेता है।]

जीवानन्द—(हँसकर) शिरोमणिजीने 'घ्राणे अर्द्धभोजनं'के अनुसार काम बना लिया क्या ?

[बहुतसे लोग हँसकर मुँह फेर लेते हैं।]

शिरोमणि—(हतबुद्धि होकर) कहता हूँ, हुजूर। मैं सब यथाधर्म ही कहूँगा।

जीवानन्द—(गरदन हिलाकर) सम्भव तो यही है। आप शास्त्रज्ञ प्रधान ब्राह्मण ठहरे, मगर, एक स्त्रीके नष्ट चरित्रकी कहानी उसकी अनुपस्थितिमें

कहनेमें आपका 'यथा' रहे तो रहे, पर 'धम' भी रहेगा क्या? मुझे खुद ऐसी कोई विशेष आपत्ति नहीं,—धर्माधर्मकी बला मेरेसे बहुत दिन पहले ही दूर हो गई है। फिर भी, मैं कहता हूँ कि उसकी जरूरत नहीं। बल्कि मैं जो पूछता हूँ उसका जवाब दीजिए। मौजूदा भैरवीको आप लोग अलग करना चाहते हैं,—यही न?

सबके सब—(सिर हिलाकर) हाँ, हाँ।

जीवानन्द—इनसे अब काम नहीं चलता?

जनार्दन—(प्रतिवादीके ढंगपर सिर उठाकर) इसमें काम चलने न चलनेकी क्या बात है हुजूर, गाँवकी भलाईके लिए ही जरूरी है।

जीवानन्द—(हँसकर) अर्थात् गाँवकी भलाई-बुराईकी चर्चा बिना छेड़े भी यह मान लिया जा सकता है कि आपकी भलाई-बुराई कुछ-न-कुछ है ही। अलग करनेका मुझे अधिकार है या नहीं, सो तो मैं नहीं जानता; पर मुझे कोई खास आपत्ति नहीं है। मगर, क्या और कोई बहाना नहीं बनाया जा सकता? देखिए न कोशिश करके। बल्कि, हमारे एककौड़ीको भी साथ ले लीजिए। इस विषयमें उसको काफी हाथ-जस है, अनुभव है।

[सबके सब अवाक् रह जाते हैं।]

जीवानन्द—इन लोगोंके सतीत्वकी कहानी तो अत्यन्त प्राचीन और प्रसिद्ध है। लिहाजा, उसे अब छेड़नेकी जरूरत नहीं। भैरवी रहनेसे ही भैरव आ जुटता है, और भैरवोंकी भी भैरवीके बिना गुजर नहीं होती, यह तो सनातन प्रथा है,—सहजमें नहीं टाली जा सकती। देश-भरके भक्त लोग नाराज हो जायँगे, और हो सकता है कि देवी खुद भी खुश न हों,—एक उपद्रव खड़ा हो जाय। मातङ्गी भैरवीके पाँचेक भैरव थे और उनके पहले जो थीं उनके भैरवोंकी, सुनते हैं, उँगलियोंपर गिनती ही नहीं हो सकती। क्या कहते हैं शिरोमणिजी महाराज, आप तो इस प्रदेशके प्राचीन व्यक्ति हैं, जानते हैं सब?

शिरोमणि—(सूखे मुँहसे बहुत ही धीरेसे) क्या मालूम, इसने सब सुन लिया है क्या!

[प्रफुल्ल प्रवेश करता है। उसके हाथमें अंग्रेजी-बंगलाके अखबार और कुछ खुली हुई चिट्ठियाँ हैं।]

जीवानन्द—क्या है जी प्रफुल्ल, यहाँ भी डाकखाना है क्या? आह,—कब ये सब उठ जायँगे!

प्रफुल्ल—(गरदन हिलाकर) बात तो ठीक है। उठ जानेसे आपको सहूलियत होती। मगर अभी, जब कि उठे नहीं हैं, इन्हें देखनेको जरा समय मिलेगा? बहुत जरूरी हैं।

जीवानन्द—सो मैं समझ गया, नहीं तो यहाँ लाते क्यों? मगर देखनेकी फुरसत मुझे अब भी नहीं है, और आगे भी न होगी। लेकिन क्या है सो बाहरसे ही समझ रहा हूँ। वह रही हीरालाल-मोहनलालकी दूकानकी छाप। पत्र उनके वकीलका है या सीधा अदालतसे आ रहा है? यह लिफाफा तो सालोमन साहबका मालूम होता है। बाप रे, विलायती सुधाकी गन्ध तो जैसे कागज फाड़कर निकली पड़ती है। क्या फरमाते हैं साहब? डिक्री जारी करेंगे या इस राज-शरीरको लेकर खींचातानी करेंगे,—क्या लिख रहे हैं? ओह! पुराने जमानेका ब्राह्मण-तेज अगर कुछ भी बचा होता तो इस यहूदीके बेटेको एकदम भस्म ही कर देता। तब शराबका कर्ज तो नहीं चुकाना पड़ता।

प्रफुल्ल—(व्याकुल होकर) क्या कह रहे हैं भाई-साहब? रहने दीजिए, रहने दीजिए, फिर किसी वक्त देखिएगा।

(लौट जानेको उद्यत होता है।)

जीवानन्द—(हँसकर) अरे शरमकी क्या बात है भाई, ये सब अपने ही आदमी हैं, ज्ञात-गोष्ठी हैं,—यहाँ तक कि इन्हें मणि-माणिक्यके दो पहलू कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी। इसके सिवा तुम्हारे भाई-साहब तो कस्तूरी-मृग ठहरे। सुगन्धको और कहाँ तक दबाये रखा जा सकता है, भाई? प्रफुल्ल, नाराज मत होओ भाई, अपना कहने लायक तो किसीको बाकी नहीं छोड़ा। पर इन चालीस सालोंकी आदतको छोड़ सकूँगा ऐसा तो नहीं मालूम होता,—इससे तो बल्कि जाली नोट-ओट बना सके, ऐसे किसीको अगर ढूँढ़-ढाँढ़ लाते—

प्रफुल्ल—(अत्यन्त नाराज होकर भी हँस देता है) देखिए, सब-कोई आपकी बातको समझेंगे नहीं। सच समझकर अगर कोई—

जीवानन्द—(गम्भीर होकर) ढूँढ़कर ले आया? तब तो जान बच जाय, प्रफुल्ल। राय साहब, सुना है कि आप तो बड़े अनुभवी आदमी हैं, आपकी जान-पहचानका क्या ऐसा कोई—

जनार्दन—(म्लान-मुखसे उठकर) अबेर हो गई है, अगर आज्ञा हो तो—

जीवानन्द—बैठिए, बैठिए, नहीं तो प्रफुल्लकी स्पर्द्धा बढ़ जायगी। इसके

अलावा भैरवीकी बात भी खतम हो जाने दीजिए।—पर, मेरे 'जाओ' कहनेसे ही क्या वह चली जायगी ?

जनार्दन—इसका भार हम लोगोंपर रहा।

जीवानन्द—लेकिन और किसीको नियुक्त भी तो करना चाहिए। स्थान तो खाली नहीं रह सकता।

बहुतसे—यह भार भी हमीं लोगोंपर रहा।

जीवानन्द—खैर जान बची, तब वह जरूर चली जायगी। इतने आदमियोंके निश्वासका भार अकेली भैरवी ही क्यों, स्वयं माता चण्डी भी नहीं सम्हाल सकतीं। अपने हानि-लाभकी बात आप ही लोग समझें, परन्तु, हमारी जैसी अवस्था है, उसे देखते हुए रुपये मिलनेसे हमें किसी भी बातमें उज्र नहीं है। नये बन्दोबस्तमें हमें कुछ मिलना चाहिए। हाँ, अच्छी याद आई, देखो तो रे कोई, एककौड़ी है या चला गया ? पर गला जो इधर सूखकर मरुभूमि हो गया !

बेहरा—(प्रवेश करके मालिकके व्यग्र-व्याकुल हाथमे भरा हुआ गिलास थमाते हुए) वे भोजनशालाकी कोठरियाँ देख रहे हैं।

जीवानन्द—अभीसे ? बुला उसे। (शराब पीता है।)

[इसके बाद पूजार्थी लोग मन्दिरमे प्रवेश करने लगते है और अपनी अपनी पूजा समाप्त करके बाहर निकलते जाते है। इनकी संख्या क्रमशः बढ़ती जाती है।]

[एककौड़ीका प्रवेश]

जीवानन्द—आज मैंने भैरवीको तलब किया था। किसीने उन्हें खबर दी थी ?

एककौड़ी—मैं खुद गया था।

जीवानन्द—वे आईं थीं ?

एककौड़ी—जी नहीं।

जीवानन्द—नहीं क्यों ? (एककौड़ी सिर झुकाये चुप रहता है) कब आयेंगीं, कुछ कहा है ?

एककौड़ी—(उसी तरह सिर झुकाये हुए) इतने आदमियोंके बीच मैं उस बातको हुजूरके सामने पेश नहीं कर सकता।

जीवानन्द—एककौड़ी, तुम अपना गुमाश्तागीरीका कायदा अभी रहने दो। बताओ, वे आयेंगी या नहीं ?

एककौड़ी—नहीं ।

जीवानन्द—क्यों ?

एककौड़ी—वे आ नहीं सकेंगीं । उन्होंने कहा है, अपने हुजूरको कह देना, उनमें न्याय-विचार करने लायक विद्या-बुद्धि हो तो वे अपनी प्रजाका करें, मेरे न्याय-विचारके लिए अदालत खुली पड़ी है ।

जीवानन्द—(गम्भीर चेहरेसे) हूँ ! अच्छा तुम जाओ ।

[एककौड़ीका प्रस्थान]

प्रफुल्ल, वह जो चीनीकी कम्पनीके साथ हजार बीघा जमीन बेचनेकी बात हुई थी, उसकी दलील लिखी जा चुकी ?

प्रफुल्ल—जी हाँ, लिखी जा चुका ।

जीवानन्द—अभी जाकर उसे पक्की कर लो । लिख दो, जमीन उन्हें मिलेगी ।

प्रफुल्ल—ऐसा ही होगा ।

[पूजार्थी और पूजार्थिनी गण जाते-आते है ।]

जीवानन्द—आज तो पूजाकी बड़ी भीड़ देख रहा हूँ । या, रोज ही ऐसी होती है ?

जनार्दन—आज जरा कुछ विशेष आयोजन तो है ही,—इसके सिवा इन 'चड़क' के दिनोमे कुछ दिनों तक ऐसी ही रहती है । लोगोंकी भीड़ अभी बढ़ती ही रहेगी ।

जीवानन्द—ऐसी बात है क्या ? अबेर हो चली तो अब उठना चाहिए । (हँसकर) एक मजेकी बात देखी रायसाहब, चण्डीगढ़के लोग लगभग भूल ही जाते हैं कि जमींदार अब कालीमोहन नहीं हैं,—जीवानन्द चौधरी हैं । बहुत फर्क है न ?

[क्या जवाब दें, कुछ सोच न सकनेके कारण जनार्दन सिर्फ उनके मुँहकी ओर देखते रहते है ।]

जीवानन्द—यहाँ ऐसा एक भी प्राणी न होगा, जो बीजगाँवकी रिआया न हो । ठीक है न, शिरोमणिजी ?

शिरोमणि—इसमें सन्देह ही क्या है, हुजूर !

जीवानन्द—नहीं तो,—मुझे कोई सन्देह नहीं, पर और किसीको सन्देह न

हो। अच्छा, नमस्कार शिरोमणिजी, चल दिया। (हँसकर) मगर, भैरवीको विदा करनेका मामला खतम होना चाहिए। चलो प्रफुल्ल, चलना चाहिए अब।

[प्रस्थान।

शिरोमणि—(जमींदार सचमुच चला गया या नहीं, उचककर यह देखनेके बाद—) जनार्दन, कैसा मालूम होता है, भाईसाहब?

जनार्दन—मालूम तो बहुत-कुछ होता है।

शिरोमणि—महा पापिष्ठ है,—हया-शरम जरा भी नहीं।

जनार्दन—(गम्भीर मुखसे) बिलकुल नही।

शिरोमणि—बड़ा दुर्मुख है, मुहफट! दूसरोंकी मान-मर्यादाका जरा भी खयाल नहीं।

जनार्दन—कतई नहीं।

शिरोमणि—मगर देखा भाईसाहब, बात करनेका ढंग? सीधी है या टेढी, सच है या झूठ, मज़ाक़ है या तिरस्कार,—कुछ सोचा-समझा ही नहीं जा सकता। आधी बातें तो समझमें ही नहीं आईं,—जैसे पहेली हो। पाखंडी सच कह गया या हम लोगोंको बन्दर-नाच नचा गया,—ठीक समझमें नही आया। पर जानता सब है, क्या कहते हो?

[जनार्दन निरुत्तर हो रहता है।]

शिरोमणि—जैसा कि सोच रक्खा था बेटा बुद्धू-सुद्धू नही है,—कोई खास मतलब नहीं निकलनेका, यही आशंका होती है न?

जनार्दन—माताकी इच्छा।

शिरोमणि—इसमें तो कहना ही क्या है! मगर मामला कुछ खिचड़ी हो गया। न तो इसको पकड़ा जा सका और न उसीको मार सके। तुम्हारा क्या है भाई साहब! पैसेका जोर है, छोकड़ी यक्षकी तरह पहरा दे रही है,—चले जानेसे बगीचेके सामनेका बेड़ा तुम्हारा मजेका चौकस हो जायगा। पर शेरकी माँदके आगे जाल फैलानेमें मैं न मारा जाऊँ।

जनार्दन—आप डर गये क्या भाईसाहब?

शिरोमणि—नहीं नहीं, डरा नहीं, डरनेकी क्या बात है,—मगर तुम्हें भी भरोसा हो गया हो ऐसा तो तुम्हारा मुँह देखकर भी मालूम नहीं होता। हुजूर तो कान-कटे सिपाही ठहरे,—बातें भी पहेली-सी हैं और काम भी वैसे ही अद्भुत

हैं ! उन्होंने हम लोगोंको गला दबाकर शराब नहीं पिला दी यही आश्चर्य है !—एककौड़ीकी जबानी भैरवी महाराजिनकी घुड़की भी तो सुन ली ? तुम लोग तो चुप थे, मैंने ही ज्यादा बातें की थीं,—पर यह अच्छा नहीं किया । क्या मालूम, एककौड़ी बेटा भीतर ही भीतर सब बातें कहीं कह न दे । दोके बीचमें पड़कर आखिर जालमें न फँस जाऊँ !

जनार्दन—(उदास कण्ठसे) सब चण्डीकी इच्छा है । अबेर हो गई है, शामके बाद एक बार आइएगा ?

शिरोमणि—सो तो आऊँगा ही । पर, वह देखो, वे तो फिर इधर ही आ रहे हैं जी !

[मन्दिरके प्राङ्गणके एक दरवाजेसे षोड़शी और उसके पीछे सागर और उसके साथियोंका प्रवेश । दूसरे दरवाजेसे जीवानन्द, प्रफुल्ल, नौकर और कुछ पियादोंका प्रवेश ।]

जीवानन्द—चला जा रहा था, सिर्फ तुम्हें आते देखकर लौट आया । एककौड़ीके मारफत तुम्हें बुलवाया था और उसीके मुँहसे तुम्हारा जवाब भी सुना । तुम्हारे विरुद्ध राजाकी अदालतमें जाकर खड़े होनेकी बुद्धि मुझमें नहीं है, पर अपनी प्रजाको शासनमें रखनेकी विद्या मैं जानता हूँ । तमाम गाँवकी प्रार्थनाके अनुसार तुम्हारे सम्बन्धमें मैंने क्या आदेश दिया है, सुना है ?

षोड़शी—नहीं ।

जीवानन्द—तुम्हें विदा कर दिया गया है । नई भैरवी नियुक्त करके उसे मन्दिरका भार दिया जायगा । अभिषेकका दिन भी निश्चित हो गया है । तुम रायसाहब वगैरहके हाथमें देवीकी समस्त अस्थावर सम्पत्ति सौंपकर मेरे गुमाश्ताके हाथमें सन्दूककी चाभी दे देना । इस विषयमें तुम्हें कुछ कहना है ?

षोड़शी—मेरे वक्तव्यसे आपको कोई मतलब है क्या ?

जीवानन्द—नहीं, कोई मतलब नहीं । पर आज शामके बाद यहींपर एक सभा होगी । इच्छा हो तो पाँच पंचोंके सामने तुम अपना दुखड़ा सुना सकती हो । हाँ, खूब याद आया, सुना है कि मेरे विरुद्ध मेरी प्रजाको तुम विद्रोही बनानेकी कोशिश कर रही हो ?

षोड़शी—सो नहीं जानती । पर अपनी प्रजाको आपके उपद्रवोंसे बचानेकी कोशिश जरूर कर रही हूँ ।

जीवानन्द—(ओठ चबाते हुए) कर सकोगी ?

षोड़शी—कर सकना न सकना माता चण्डीके हाथमें है ।

जीवानन्द—मरेंगे वे !

षोड़शी—आदमी अमर नहीं है, इस बातको वे जानते हैं ।

[क्रोध और अपमानसे सबकी आँखें और चेहरे सुर्ख हो उठते हैं । एककौड़ी ऐसा भाव दिखाने लगता है मानो वह बड़ी मुश्किलसे अपनेको सम्हाले हुए है ।]

जीवानन्द—(क्षण-भर स्तब्ध रहकर) तुम्हारी अपनी प्रजा अब कोई नहीं रही । वे जिनकी प्रजा हैं उन्होंने खुद दस्तखत कर दिये हैं । उन्हें कोई रोक नहीं सकता ।

षोड़शी—(मुँह उठाकर) आपका और कोई हुकम है ? नहीं न ? तो दया करके अब मेरी बात सुन लीजिए ।

जीवानन्द—बोलो ।

षोड़शी—आज देवीकी अस्थावर सम्पत्ति सौंप देनेकी फुरसत मुझे नहीं है, और शामको मन्दिरके भीतर कहीं भी सभा-समितिके लिए स्थान न होगा । फिलहाल यह सब बन्द रखना होगा ।

शिरोमणि—(सहसा चीत्कार करके) हरगिज नहीं ! हरगिज नहीं ! यह सब चालाकी हम लोगोंके सामने नहीं चल सकती, कहे देता हूँ,—

[जीवानन्दके सिवा सभी कोई इसकी प्रतिध्वनि कर उठते हैं ।]

जनार्दन—(गरम होकर) तुम्हें फुरसत और मन्दिरके भीतर जगह क्यों नहीं होगी, जरा सुनूँ तो महाराजिन ?

षोड़शी—(विनीत कण्ठसे) आप तो जानते हैं रायसाहब, इस समय 'चड़क' का *उत्सव है । यात्रियोंकी भीड़ है, संन्यासियोंकी भीड़ है,—फिर मुझे फुरसत कहाँ ? और उन्हें भी कहाँ हटाया जाय ?

जनार्दन—(आपेसे बाहर होकर गरजते हुए) होनी ही चाहिए ! मैं कहता हूँ, होनी चाहिए !

षोड़शी—(जीवानन्दसे) लड़ाई-झगड़ा करनेसे मुझे घृणा है । पर, इन

---

* चरक-पूजा बंगालमें चैत्र-संक्रान्तिके दिन खूब धूम-धामसे होती है । इसमें बहुतसे गृहस्थ भी संन्यास ग्रहण करते हैं जो संन्यासी कहलाते हैं, और पूजा समाप्त होनेपर संन्यास छोड़ देते हैं ।

सब कामोंके लिए अभी मौका नहीं मिलेगा, यह बात आप अपने अनुचरोंको समझा दीजिएगा। मेरे पास समय कम है, आप लोगोंका काम निबट चुका हो तो मैं अब जाती हूँ।

जीवानन्द—(गरम स्वरसे) लेकिन मैं हुक्म दिये जाता हूँ कि आज ही यह सब होगा और होना ही चाहिए।

षोडशी—जबरदस्ती ?

जीवानन्द—हाँ जबरदस्ती।

षोडशी—आसानी-परेशानी चाहे जो भी हो ?

जीवानन्द—हाँ, आसानी-परेशानी चाहे जो भी हो।

षोडशी—(पीछेकी तरफ भीड़मेंसे सागरको उँगलीके इशारेसे बुलाकर) सागर, तुम लोगोंका सब ठीक है ?

सागर—(विनयके साथ) ठीक है मा, तुम्हारे आशीर्वादसे कमी कुछ भी नहीं।

षोडशी—अच्छी बात है। जमींदारके आदमी आज एक हंगामा खड़ा करना चाहते हैं, पर मैं ऐसा नहीं चाहती। इस चड़क-पूजाके मौकेपर खून-खराबी हो ऐसी मेरी इच्छा नहीं है, लेकिन, जरूरत पड़नेपर करनी ही होगी। इन आदमियोंको तुम लोग देख-भाल लो, इनमेंसे कोई भी मेरे मन्दिरकी हदमें न आ पावे। चटसे मार मत बैठना, सिर्फ निकाल देना। [प्रस्थान

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

षोड़शीकी कुटीर

[संध्या उत्तीर्ण हो चुकी है । घरके भीतर दीआ जल रहा है । षोड़शी बाहर बैठी है । इतनेमें निर्मल और हैमवती प्रवेश करते हैं । पीछे पीछे नौकर है ।]

षोडशी—आओ, आओ, पर यह क्या माजरा है ! तुम लोगोंके आज दो-पहरकी गाड़ीसे चले जानेकी बात थी न ?

[निर्मल और हैमवती दोनों पास बैठ जाते हैं ।]

हैमवती—बात तो थी, पर गये नहीं । इन्हें भी नहीं जाने दिया । जीजीके इस नये घरको आँखोंसे देखे बिना चले जानेसे पछताना पड़ता ।

निर्मल—आँखोंसे देख जानेपर भी कम पछताना पड़ेगा, ऐसा तो नहीं मालूम होता ।

हैमवती—सो तो ठीक है । शायद आँखोंसे न देखना ही अच्छा होता । इस घरमें और चाहे जो भी दोष हो फिजूलखर्चीकी बदनामी, शिरोमणिजी ही क्यों, शायद मेरे पिताजी भी नहीं कर सकते । मगर यह पागलपन क्यों किया जीजी, इस घरमें तो तुमसे नहीं रहा जायगा !

षोडशी—इससे भी कहीं बुरे घरोंमें लोगोंको रहना पड़ता है, बहन ।

हैमवती—तो क्या सचमुच ही तुम सब छोड़ दोगी ?

निर्मल—इसके सिवा और उपाय क्या है, बता सकती हो ? सारे गाँवके साथ तो एक जनी असहाय स्त्री रात-दिन झगड़ा करके टिक नहीं सकती ।

हैमवती—हम लोगोंने सब-कुछ सुना है । तुम संन्यासिनी हो, सब-कुछ सह सकती हो; पर, इसके साथ जो झूठी बदनामी लगी रह गई उसे भी क्या सह लोगी जीजी ?

षोडशी—बदनामी अगर झूठी ही हो तो क्यों नहीं सह सकूँगी ? संसारमें झूठी बातोंकी कमी नहीं, पर, उस झूठी बातके साथ लड़कर झूठा काम करनेमें मुझे शरम लगती है, बहन !

हैमवती—जीजी, तुम संन्यासिनी हो, तुम्हारी सब बातें मैं नहीं समझ सकती। पर तुम्हें देखकर मुझे कैसा लगता है जानती हो? मेरे ससुरको किसी एक राजाने तलवार खिलअतमें दी थी। म्यान उसकी धूल-मिट्टीसे मैली हो गई है पर असली चीजपर कहीं जरा भी मैल नहीं लगा है। वह जैसी सीधी है वैसी ही पाक-साफ और कठोर भी। उसकी बात, तुम्हें देखते ही, मुझे याद आ जाती है। मालूम होता है, गाँव-भरके सभी लोग गलतीपर हैं, असल बात कोई भी नहीं जानता।

षोड़शी—(हैमवतीका हाथ अपने हाथमें लेकर) आज तुम लोगोंका जाना क्यों नहीं हुआ हैम? शायद कल जाओगी, न?

हैमवती—अपने लड़केकी बात छेड़ते ही तुम नाराज हो जाती हो, उसे अब न कहूँगी; पर बड़े-भारी आँधी-मेहके समय अँधियारी रातमें मेरे इस अन्धे आदमीको जो हाथ पकड़कर नदी पार करके चुपके-से घर पहुँचा गई थीं, उनके पैरोंकी धूल लिये बगैर हम लोग जा कैसे सकते थे? लेकिन, जानेके पहले इतना वचन मुझे दो कि अगर कभी आपको किसी आदमीकी जरूरत पड़े तो, उस समय, इस प्रवासी बहनको न भूलना।

हैमवती—(षोड़शीको नीरव देखकर) शायद वचन देना नहीं चाहतीं, क्यों जीजी?

षोड़शी—वचन दिया, न भूलूँगी। भूली भी नहीं हेम। चोटपर चोट खा-खाकर आज ही तुम्हें चिट्ठी लिख रही थी। सोचा था कि तुम्हारे चले जानेपर उसे डाकसे भेज दूँगी। मगर उसे खतम नहीं कर पाई,—सहसा मालूम हुआ कि इसके लिए शायद तुम्हारे पिताजीसे ही अन्तिम लड़ाई छिड़ जायगी।

हैमवती—छिड़ भी सकती है। लेकिन और भी एक भारी बात है जीजी। मेरे इस अन्धे आदमीको जो तुमने बचाया है, उससे बढ़कर संसारमें मेरे लिए और तो कुछ है नहीं।

षोड़शी—सचमुच ही कुछ नहीं है हैम।

हैमवती—नहीं, कुछ नहीं है। और इस सच्ची बातको कह जाऊँ, इसी लिए आज नहीं जा सकी।

षोड़शी—(हँसकर) मगर इस छोटीसी बातके लिए तो तुम ही काफी थीं बहन, निर्मल बाबूको तो आसानीसे जाने दे सकती थीं।

हैमवती—इन्हें ? अकेला ? हाय हाय, जीजी, बाहरसे तुम लोग सोचा करती हो, बड़े-भारी बैरिस्टर हैं, जबरदस्त आदमी हैं। पर मैं ही जानती हूँ सिर्फ, इस बिना-तनखाकी दासीके मिल जानेसे ही ये दुनियामें टिके हुए हैं। सच कहती हूँ, जीजी, मरदोंमें यह एक आश्चर्यकी बात है। बाहरकी तरफ जो जितने बड़े, जितने जबरदस्त, जितने शक्तिशाली होते हैं, भीतरकी तरफ वे उतने ही अशक्त, उतने ही कमजोर, उतने ही अपटु होते हैं। जरूरतके वक्त न जाने कहाँ इनके कागजात खो जाते हैं, बाहर जाते समय कोट-कमीज-पोशाकका पता ही नहीं रहता, रास्तेमें निकलनेपर जेबके रुपये-पैसोंका होश नहीं रहता,—आखिर किस भरोसेपर इन्हें अकेला छोड़ दूँ बताओ तो ? (हँसकर) जरासा आँखोंसे ओझल किया था, तो उस दिन ऐसा विभ्राट हो गया। भाग्यसे तुम मिल गईं।

नौकर—माजी, कलकी तरह आज भी आँधी-मेह हो सकता है। बादल हो रहे हैं !

हैमवती—तो अब उठूँ। बादलोंके लिए नहीं, जीजी,—तुम्हारे पाससे तो उठनेको जी ही नहीं करता। पर कल सबेरे ही रवाना होना है,—आज कामका अन्त ही नहीं। इनको लेकर भाग आई हूँ, छिपके घरमें घुसना होगा, पिताजी न देख लें। अब तक लल्ला स्यात् नींदसे उठ बैठा होगा, उसे दूध पिलाकर सुला देना होगा; इनको खिलाना-पिलाना और कोई जानता नहीं, ओटमें रहकर सब इन्तजाम करना पड़ेगा,—उसके बाद रेल-गाड़ीके लम्बे सफरकी सब तैयारियाँ मुझे खुद अपने हाथोंसे करनी पड़ेंगी। किसीपर भरोसा नहीं किया जा सकता। पति, बच्चे, नौकर-चाकर,—इनका कितना झंझट है, कितना भार है,—मुझे साँस लेनेका भी वक्त नहीं है, जीजी।

षोड़शी—इसमें तुम्हें तकलीफ होती है, बहन ?

हैमवती—(हँसते चेहरेसे) सो होती है। फिर भी यही आशीर्वाद दो मुझे, कि इसी तकलीफको लिये हुए ही किसी दिन जा सकूँ। और दुबारा अगर फिर जन्म लेना पड़े तो ऐसी ही तकलीफ फिर विधाता मेरे करममें लिख दें, उस दिन भी इसी तरह मुझे साँस लेनेकी फुरसत न मिले।

षोड़शी—तुम्हारी बात मैं समझ गई, हैम। यह मानो तुम्हारा आनन्दका मधुचक्र है। भार जितना ही बढ़ता जाता है उतने ही इसके अन्ध्र-रन्ध्र मधुसे भरते जाते हैं। ऐसा ही हो, आज तुम्हें यही आशीर्वाद देती हूँ।

हैमवती—(सहसा पाँव छूकर और पद-धूलि सिरसे लगाकर) यही दो जीजी, हम स्त्रियोंके जीवनमें इससे बढ़कर आशीर्वाद और क्या है !

निर्मल—आह, न जाने क्या बकती जा रही हो ! आज तुम्हें हो क्या गया है ?

हैमवती—क्या हुआ है, तुम क्या जानोगे ! द्वितीय अंक.

षोड़शी—जाननेकी शक्ति भी है क्या आप लोगोंमें ?

निर्मल—' आप लोगोंमें ' अर्थात् पुरुषोंमें ? नहीं, इतने बड़े कठिन तत्त्वको हृदयंगम करनेकी सामर्थ्य हममें नहीं है, इस बातको मैं मानता हूँ,—मगर आपने इस सत्यको कैसे जान लिया ?

हैमवती—क्यों ? देवीकी भैरवी होनेसे ? पर भैरवी क्या स्त्री नहीं है ? अजी महाशय, यह तत्त्व हम लोगोंको कोशिश करके नहीं सीखना पड़ता। हमारे जनमते ही विधाता अपने हाथोंसे, दोनों हाथ भरकर, हमारी छातीमें उँडेल देते हैं। उस सम्पदाके आगे हम इन्द्राणीके ऐश्वर्यकी भी कामना नहीं करतीं, क्या यह सच नहीं है जीजी ?

षोड़शी—सच ही तो है बहन !

नौकर—माजी, बादल तो बढ़े ही आते हैं !

हैमवती—ले, अभी उठती हूँ। बहुत बातें बक गई, जीजी, माफ करना।

निर्मल—हैमको जो चिट्ठी लिख रही थीं उसे हाथमें दे देनेसे समय भी बचता और पैसे भी।

षोड़शी—(हँसकर) न देनेसे भी बच जायँगे। शायद अब उसकी जरूरत ही न होगी।

निर्मल—भगवान करें, न हो। परन्तु होनेपर अपने इन दो प्रवासी भक्तोंको भूलिएगा मत !

हैमवती—तो अब जाती हूँ जीजी। (पद-धूलि लेकर उठ खड़ी होती है) तुम्हारे मुँहकी ओर देखकर आज न जाने क्या क्या ख्याल आ रहे हैं। जीजी, मालूम होता है, ऐसा मानो तुम्हें और कभी नहीं देखा,—मानों सहसा न जाने कहाँ कितनी दूर चली गई हो।

निर्मल—नमस्कार। जरूरतके वक्त पुकार होनी चाहिए।

[सबका प्रस्थान।

षोड़शी—हैम, तुम आज मानो मेरी न जाने कितने दिनोंकी आँखोंकी पट्टी खोल गई, बहन।—कौन?

[सागरका प्रवेश]

सागर—मैं हूँ सागर।

षोड़शी—तेरे और सब साथी कहाँ हैं जो कल दल बाँधकर आये थे?

सागर—आज भी वे सब उसी तरह दल बाँधकर गये हैं हुजूरकी कचहरीमें। और शायद तुम्हारे ही खिलाफ—

षोड़शी—कहता क्या है सागर? मेरे ही खिलाफ?

सागर—ताज्जुब करनेकी तो इसमे कोई बात नहीं है मा! सब तरहकी आफत बिपतमे हमेशासे तुम्हारे ही पास आकर खड़े होनेकी आदत थी सबकी। शुरूमें उस आदतको शायद छोड़ न सके होंगे। मगर आज जमींदारकी एक ही घुड़कीमे उन्हें होश आ गया है।

षोड़शी—अच्छी बात है। मगर सभा तो, सुना था, मन्दिरहीमें होनेवाली है?

सागर—होनेवाली तो थी, और हुजूरके भोजपुरियोकी भी मनसा थी, पर गाँवके कोई राजी नहीं हुए। वे तो सब इधरके ही आदमी हैं,—हम चचा-भतीजोंको शायद पहचानते हैं।

षोड़शी—क्या तय हुआ सभामे?

सागर—सो सब अच्छा ही हुआ। इसी मंगलवारके दिन उस लड़कीका अभिषेक होगा। तुम्हे भी कोई चिन्ता नहीं,—काशीवासके लिए प्रार्थना करनेपर सौ-एक रुपये पा सकती हो।

षोड़शी—प्रार्थना करनी पड़ेगी शायद हुजूरके दरबारमें?

सागर—हाँ, ऐसा ही मालूम होता है।

षोड़शी—अच्छा, ज़मीन-जायदाद जिनकी सब चली गई उनके लिए क्या तय हुआ?

सागर—डरनेकी कोई बात नहीं मा, हमेशासे जो चला आया है, उसके खिलाफ कुछ न होगा।

षोड़शी—और तुम लोगोंका क्या होगा?

सागर—हम चचा-भतीजोंका? (जरा हँसकर) उसका इन्तजाम भी

रायसाहबने कर दिया है, वे बिलकुल चुप मारे नहीं बैठे थे। पक्के तजरबेकार आदमी ठहरे। दारोगा, पुलिस वगैरह मुट्ठीमें हैं, दसेक कोसके भीतर एक डकैती होने-भरकी देर है।

षोड़शी—(डरकर) क्यों रे, इसको क्या तुम लोग सत्य समझते हो ?

सागर—समझते हैं ? यह तो आँखोंके सामने साफ दिखाई दे रहा है, मा। हम लोगोंको अब जेलखानेसे बाहर रख सके, ऐसी ताकत किसीमें भी नहीं। (जरा ठहरकर) मगर, जिन्हें जेलकी सजा न होगी उनका दुर्भाग्य कुछ कम नहीं है, मा।

षोड़शी—क्यों ?

सागर—उनकी हालत हम लोगोंसे भी बुरी होगी। जेलके अन्दर खानेको मिलता है,—कुछ भी हो, हमें दो गस्से खानेको तो मिलेगा; लेकिन, इन्हें वह भी नहीं मिलेगा। रायसाहबसे उधार लेकर जमींदारकी सलामी जुटाई है,—उन हाथ-चिट्ठोंकी डिक्री होने-भरकी देर है, उसके बाद उनके निजके खेतोंमें मजदूरी करके थोड़ा-बहुत खानेको मिले तो ठीक है, नहीं तो—

षोड़शी—नहीं तो क्या ?

सागर—नहीं तो आसामके चायके बगीचे तो हैं ही। क्यों मा, तुम्हें भी क्या याद नहीं पड़ता, अपने उस बेलडाँगामें पहले हम लोगोंके कितने घर भूमिज बरइयोंकी बस्ती थी ?

षोड़शी—(गरदन हिलाकर) हाँ हाँ।

सागर—आज वे सब कहाँ हैं ? कुछ तो चले गये कोयलेकी खानोंमें, कुछका चालान हो गया चायके बगीचोंको। मगर मैंने तो बचपनमें देखा है, उनके जमीन-जायदाद, हल-बैल, सब-कुछ था। दो-मुट्ठी अन्नकी हैसियत उन सबके थी। आज उन लोगोंकी आधी जायदाद तो एककौड़ी नन्दीके पास पहुँच गई और आधी रायसाहबके पास है।

षोड़शी—(दंग रहकर) अच्छा, सागर, ये सब बातें तैंने किससे सुनीं ?

सागर—खुद हुजूरके ही मुँहसे।

षोड़शी—तो यह सब उन्हींके इरादे हैं ?

सागर—(सोचकर)—क्या मालूम मा, पर मालूम होता है रायसाहब भी हैं इसमें।

षोडशी—यह तो हुई तुम लोगोकी बात, सागर। मगर मैं तो अकेली हूँ। जमींदार चाँहे तो मेरे ऊपर भी जुलुम कर सकते हैं?

सागर—सो तो नहीं जानता मा, सिर्फ इतना जानता हूँ कि तुम अकेली नहीं हो। (कुछ देर चुप रहकर) मा, हम लोगोको अपना परिचय आप नहीं देना चाहिए, गुरुकी मनाही है, (लाठाको जोरमे मुट्ठीमे दबाकर) हरिहर सरदारके भतीजे सागरका नाम दस-बीस कोसके लोग जानते हैं,—तुम्हारे ऊपर जुल्म करनेवाला आदमी तो मा, पचास गाँवमे भी कोई ढूँढे न मिलेगा।

षोडशी—(दोनो आँखोसे अकस्मात् चिनगारियो-सी निकल उठती है) सागर, यह क्या सच है?

सागर—(चटसे झुककर और हाथकी लाठी षोडशीके पैरोके आगे रखकर) अच्छा तो मा, यही आशीर्वाद करो कि मेरी बात झूठ न हो।

षोडशी—(आखोकी दृष्टि एक बार जरा कोमल होकर फिर उसी तरह जलने लगती है) अच्छा, सागर, मैंने तो सुना है, तुम लोगोको जानका डर नहीं करना चाहिए?

सागर—(हँसकर) झूठ सुना है यह भी तो मै नहीं कहता, मा।

षोडशी—सिर्फ प्राण दे ही सकते हो, ले नही सकते?

सागर—नहीं ले सकते? इस हुकमके लिए कितनी भीख न माँगी होगी, पर किसी भी तरह हुकम तो तुम्हारे मुँहसे निकलवा ही न सका, मा।

षोडशी—नहीं सागर, नही। ऐसी बात तुम लोग जबानपर भी न लाना, बेटा।

सागर—लेकिन मनसे तो उस बातको हटा नहीं सकता मा।

[पुजारीका प्रवेश।]

पुजारी—मन्दिरका द्वार बन्द कर आया, मा।

षोडशी—चाबी?

पुजारी—यह रही मा। (चाबीका गुच्छा हाथमें देकर) रात हो गई, अब आज्ञा मिले, जाऊँ?

षोडशी—अच्छा, जाओ।

(पुजारीका प्रस्थान)

षोडशी—सागर, फकीर साहब चले गये हैं। वे कहाँ हैं, पता लगाकर मुझे बता सकता है बेटा?

सागर—क्यों मा ?

षोडशी—उनकी मुझे बड़ी ज़रूरत है। तुम लोगोंको छोड़कर उनसे बढ़के शुभाकांक्षी मेरा कोई नहीं है।

सागर—मगर तुम्हींसे तो कितनी ही बार सुना है कि वे सिद्ध साधु पुरुष हैं। कहीं भी हों, उन्हें सच्चे मनसे बुलाते ही वे आ मौजूद होते हैं।

षोडशी—(चौंककर) ठीक तो है सागर, इतनी बड़ी बातको मैं भूल कैसे गई थी! अब मुझे चिन्ता नहीं, मेरे इतने बड़े दुःसमयमें वे बिना आये रह नहीं सकते।

सागर—मुझे भी यही विश्वास है। पर, बातों ही बातोंमें रात बहुत हो गई मा, तुम आराम करो, मैं जाऊँ ?

षोडशी—अच्छा, जाओ।

सागर—(जरा हँसकर) कोई डर नहीं मा, मगर तुम्हें अकेला छोड़कर कहीं भी ज्यादा देर नहीं ठहर सकता।

[प्रस्थान।

[अब तक षोडशीकी संध्या आदि नित्यक्रियायें नहीं हुई थीं, वह उनकी तैयारीमें लग जाती है।]

षोडशी—सागरने कितनी बड़ी बात याद दिला दी। फकीर साहब! आप जहाँ भी हों, इस विपत्तिमें मुझे आपके दर्शन होंगे ही होंगे।

नेपथ्यसे—मैं आ सकता हूँ ?

षोडशी—(चौंककर खड़ी हो जाती है और व्याकुल कण्ठसे कहती है)— आइए आइए,—मैं जो सर्वान्तःकरणसे आपहीको बुला रही थी!

[जीवानन्दका प्रवेश।]

जीवानन्द—इतनी जबरदस्त पति-भक्ति कलिकालमें दुर्लभ है। मेरे लिए पाद्य अर्घ्य आसन आदि कहाँ हैं ?

षोडशी—(क्षण-भर मन्न रहकर, भयके साथ) अरे आप हैं! आप क्यों आये ?

जीवानन्द—तुम्हें देखने। जरा कुछ डर गई हो मालूम होता है। डरनेकी ही बात है। पर चिल्लाना मत। साथमें पिस्तौल है,—तुम्हारे डाकुओंका दल मारा ही जायगा, और विशेष कुछ नहीं कर सकता।

[षोड़शी चुपचाप खड़ी रहती है।]

जीवानन्द—तो भी, दरवाजा बन्द करके जरा निश्चिन्त होकर बैठा जाय। क्या कहती हो ?

[दरवाजेकी तरफ जाकर हुड़का बन्द कर देते हैं।]

षोड़शी—(मारे डरके कण्ठस्वर काँप उठता है) सागर नहीं है,—

जीवानन्द—नहीं है ? नालायक गया कहाँ ?

षोड़शी—आप लोग जानते हैं, इसीसे तो—

जीवानन्द—जानता हूँ इसलिए ? मगर 'आप लोग' कौन ? मैं तो कुछ भी नहीं जानता।

षोड़शी—निराश्रय होनेकी वजहसे ही तो आदमी लेकर मुझपर अत्याचार करने आये हैं ? मगर आपका क्या बिगाड़ा है मैंने ?

जीवानन्द—आदमी लेकर अत्याचार करने आया हूँ ? तुमपर ? कसम तुम्हारी, नहीं। बल्कि, मन जाने कैसा हो रहा था, इसीसे देखने आया हूँ।

[षोड़शीकी आँखोंमें आँसू आ रहे थे, इस मज़ाक़से वे बिलकुल सूख जाते हैं। जीवानन्द पास बैठा हुआ उसके झुके हुए चेहरेकी तरफ लुब्ध-तृषित दृष्टिसे देखता है।]

जीवानन्द—अलका !

षोड़शी—कहिए ?

जीवानन्द—तुम्हारे यहाँ तमाखू-अमाखूका इन्तजाम नहीं मालूम होता ?

[षोड़शी एक बार मुँह उठाकर फिर सिर झुकाकर खड़ी रहती है।]

जीवानन्द—(दीर्घ निश्वास लेकर) ब्रजेश्वरकी तकदीर अच्छी थी। देवी रानीने उसे पकड़वा जरूर बुलाया था, पर अम्बरी तमाखू भी पिलाई थी और भोजन करानेके बाद दक्षिणा भी दी थी। बिदाईका जिक्र अभी नहीं छेड़ता,— अरे बंकिम बाबूकी वह पुस्तक * पढ़ी है कि नहीं ?

षोड़शी—आपको पकड़वा बुलाती तो वैसी ही व्यवस्था की जाती,—उलहना देनेकी जरूरत ही न पड़ती।

जीवानन्द—(हँसकर) सो ठीक है। खींचातानी रस्सा-कसी यही सब तो लोग देखते हैं। भोजपुरी पियादा भेजकर पकड़वा बुलानेको तो सभी देखते हैं, पर जो पियादा आँखोंसे नहीं दीखता,—क्यों अलका, तुम्हारे शास्त्र-ग्रन्थोंमें उसे क्या कहते हैं ? अतनु, न ? अच्छे हैं वे। (क्षणभर नीरव रहकर)

* बंकिमबाबूका 'देवी चौधरानी' उपन्यास।

बहुत ही मामूली-सा अनुरोध था, पर अब चल दिया। तुम्हारे अनुचरोंको पता लग गया तो वे जमाईकी खातिरदारी न करेंगे। और तो और, ससुराल आया हूँ, इस बातपर वे शायद विश्वास ही न करना चाहेंगे।—सोचेंगे, जानके डरसे शायद झूठ बोल रहा है।

[मारे शरमके षोड़शी और भी झुक जाती है।]

जीवानन्द—तमाखूका धुआँ फिलहाल पेटमें न जानेसे भी काम चल जाता, पर ऐसी कोई चीज, जो धुआँ न हो, पेटमें बगैर पहुँचे तो अब खड़ा नहीं रहा जाता। सचमुच नहीं है कुछ अलका ?

षोड़शी—'कुछ' क्या, शराब ?

जीवानन्द—(हँसकर सिर हिलाते हुए) अबकी गलती कर गई। उसके लिए और आदमी हैं, तुम नहीं। तुमने अपनेको समझनेके लिए मुझे काफी मौका दिया है,—और चाहे जो भी बुराई करूँ पर अस्पष्टताका अपवाद नहीं लगा सकता। लिहाजा, तुमसे अगर कुछ माँगना ही पड़े, तो ऐसी ही चीज़ माँगूगा जो आदमीको जिलाये रखती है, मौतके रास्ते ढकेलती नहीं। दाल-भात, पूड़ी-मिठाई, चना-चिवड़ा, जो भी हो, दो। बड़ी जोरसे भूख लगी है।—नहीं है ?

[षोड़शी निर्निमेष दृष्टिसे देखती रहती है।]

जीवानन्द—आज सबेरे मन अच्छा नहीं था। शरीरका जिक्र करना तो महज़ मज़ाक होगा, कारण, स्वस्थ शरीर किस चिड़ियाका नाम है, मैं जानता ही नहीं ! सबेरे अचानक नदी किनारे घूमने निकल गया। कितना पैदल चला कह नहीं सकता,—लौटनेको तबीयत न हुई। सूर्यदेव अस्त हो गये, फिर भी अकेले पानीके किनारे खड़े खड़े ऐसा अच्छा लगने लगा कि क्या बताऊँ। सिर्फ तुम्हारी याद आने लगी। खयाल आया,—कचहरीमें अब तक काफी लोग इकट्ठे हुए होंगे, तुम्हें निर्वासित करनेकी व्यवस्था आज खतम करनी ही होगी। लौटकर सभामें शामिल हुआ, पर टिक न सका। किसी बहानेसे भागकर आ खड़ा हुआ तुम्हारे इस 'मनसा' के पेड़के पीछे।

षोड़शी—फिर ?

जीवानन्द—देखा, सागर सरदार और तुम खड़ी हो। बातचीत सब सुनता रहा, मतलब समझनेमें भी देर न लगी। सोचा, हम जैसे साधु व्यक्तियोंने जो

इस प्रकारकी निर्बोध भैरवीको अलग कर देनेकी ठानी है, सो ठीक ही किया है। उस दिन रातको मकान घेरकर पुलिस-पियादे हथकड़ी लेकर आ पहुँचे थे, तुम्हारे मुँहसे जरा-सी एक बात निकलवानेके लिए मजिस्ट्रेट साहब तकने कितना जोर लगाया, पर तुमने कह दिया कि मैं अपनी इच्छासे यहाँ आई हूँ। और आज छोटी-सी एक आशाके लिए सागरचन्दकी कितनी आरज़ू-मिन्नत, कितनी खुशामद थी,—पर तुम कह बैठीं कि ऐसी बात ज़बानपर भी मत लाना बेटा। मारे अभिमानके बेटाजी रूठा-सा मुँह करके चल दिये,—यह तो अपनी आँखोंसे देख चुका हूँ। मन ही मन साष्टाङ्ग प्रणाम करके मैंने कहा, "जय चण्डीगढ़की माता चण्डीकी जय! अपनी इस अधम सन्तानपर तुम्हारी इतनी कृपा न होती तो क्या इस औरतकी बार बार इस तरह बुद्धि-लोप करतीं? अब एक बार इसे बिदा करके मुझे तख्तपर बिठा दो मा, जनार्दन और एककौड़ी, इन दोनों ताल-बेतालको साथ लेकर मैं ऐसी सेवा शुरू कर दूँगा कि एक दिनकी पूजाके जोरसे तुम्हारी मिट्टीकी मूर्ति मारे खुशीके एकदम पत्थरकी हो जायगी।" मगर भक्ति-तत्त्वकी इन सब बड़ी बड़ी बातोंपर न हो तो पीछे विचार होता रहेगा, पहले जरा भूखकी जलन मिट जाती,—भूखके मारे खड़ा नहीं रहा जाता। सचमुच, कुछ है नहीं अलका?

षोडशी—मगर घर जाकर तो मजेसे खा सकते हो।

जीवानन्द—अर्थात्, मेरे घरकी खबर मुझसे तुम ज़्यादा जानती हो! (जरा हँस देता है।)

षोडशी—जब आपने दिन-भर कुछ खाया-पिया नहीं है, तब घरमें आपके खाने-पीनेका कोई इन्तजाम न हो, ऐसा भी कहीं हो सकता है?

जीवानन्द—हो क्यों नहीं सकता? मैंने खाया नहीं इसलिए और कोई उपास किये थाली परोसे बाट जोहती रहे, ऐसी व्यवस्था तो मैंने कर नहीं रक्खी है। फिर आज ख्वामख्वाह गुस्सा करनेसे फायदा क्या अलका? (फिर उसी तरह हलकी हँसी हँस देता है।)

जीवानन्द—मेरी जो शान्तिपूर्ण जीवनयात्रा उस रोज अपनी आँखोंसे देख आई हो, शायद उसे भूल गई। तो फिर अब जाऊँ?

षोडशी—(व्याकुल कण्ठसे) देवीका जरा-सा मामूली प्रसाद है, पर उसे क्या आप खा सकेंगे?

जीवानन्द—खूब मजेसे खा सकता हूँ। पर जरा-सा मामूली प्रसाद ? सो तो तुम सिर्फ अपने ही लिए लाई होगी अलका !

षोडशी—नहीं तो क्या आपके लिए लाके रक्खा है, आप समझते हैं ?

जीवानन्द—(हँसते चेहरेसे) नहीं, सो नहीं समझता। मगर सोचता हूँ, तुम्हें वंचित रखना होगा।

षोडशी—उस चिन्ताकी जरूरत नहीं। मुझे वंचित रखनेमें आपको कोई नया अपराध न लगेगा।

जीवानन्द—नहीं, अपराध अब मेरे लिए कुछ होता ही नहीं। मैं तो एकदम उसकी पहुँचके परे हूँ। मगर अचानक एक अजीब खयाल मेरे दिमागमें आया है अलका, अगर हँसो नहीं तो तुमसे कहूँ।

षोडशी—कहिए।

जीवानन्द—मालूम होता है, अब भी अगर चाहूँ तो शायद जी सकता हूँ,—अब भी आदमीकी तरह,—पर ऐसा कोई नहीं है जो मेरी,—पर तुम्हीं सिर्फ ले सकती हो इस पापिष्ठका भार,—लोगी अलका ?

षोडशी—आप क्या कह रहे हैं ?

जीवानन्द—(आत्म-समर्पणके आश्चर्यपूर्ण स्वरमें) कह रहा हूँ मेरा सारा भार तुम ले लो अलका !

षोडशी—(चौंककर क्षण-भर रुक कर) अर्थात् मेरे जिस कलङ्कका आपने न्याय-विचार किया है, मेरे ही द्वारा उसे पक्का करा लेना चाहते हैं। मेरी माको धोखा दे सके थे, पर मुझे न दे सकिएगा।

जीवानन्द—मगर वैसी कोशिश तो मैंने नहीं की अलका। तुम्हारा न्याय-विचार किया है, पर विश्वास नहीं किया। बार बार यही खयाल आया है कि इस कठोर आश्चर्यमयी रमणीको जिसने अभिभूत किया है ऐसा वह पुरुष है कौन ?

षोडशी—(विस्मित होकर) उन लोगोंने आपको उसका नाम नहीं बताया ?

जीवानन्द—नहीं। मैंने बार बार पूछा है, वे बार बार चुप रह गये हैं।—खैर जाने दो, अब मैं जाता हूँ, क्या कहती हो ?

षोडशी—पर आपको तो कामकी बात करनी थी ?

जीवानन्द—कामकी बात ? पर क्या थी, सो मुझे अब याद नहीं आ रही है। सिर्फ यही बात याद आ रही है कि तुम्हारे साथ बात करना ही मेरा काम था। अलका, सचमुच ही क्या तुम्हारा फिरसे ब्याह हुआ था ?

षोडशी—फिरसे कैसा ? सचमुचका ब्याह मेरा सिर्फ एक ही बार हुआ है।

जीवानन्द—और तुम्हारी माने जो एक बार तुमको मुझे दिया था, वह क्या सच नहीं है ?

षोडशी—नहीं, वह सच नहीं है। माने मेरे साथ जो रुपये दिये थे, आपने सिर्फ उन्हींको लिया था, मुझे नहीं लिया। ठगाईके सिवा उसमें लेशमात्र भी कहीं सत्य नहीं था।

जीवानन्द—(कुछ देर तक ध्यानमग्नकी भाँति बैठकर; मानो बहुत दूरसे कहता है—) अलका, तुम्हारी यह बात सच नहीं है।

षोडशी—कौन-सी बात ?

जीवानन्द—तुमने जो समझ रक्खी है। सोचा था, उस कहानीको कभी किसीसे न कहूँगा, पर उस 'किसीसे' में तुम्हें नहीं डालते बनता ! तुम्हारी माको धोखा दिया था, पर तुम्हे धोखा देनेका मौका भगवानने मुझे नहीं दिया। मेरा एक अनुरोध मानोगी ?

षोडशी—कहिए।

जीवानन्द—मैं सत्यवादी नहीं हूँ, लेकिन, मेरी आजकी बातपर तुम विश्वास करो। तुम्हारी माको मैं जानता था, उनकी लड़कीको स्त्रीके रूपमे स्वीकार करनेकी मेरी मनसा नहीं थी,—मेरा लक्ष्य था सिर्फ उनके रुपयोंपर। मगर, उस रातको हाथों-हाथ जब तुम्हें पा गया, तब 'नहीं' कहकर वापस कर देनेकी इच्छा भी फिर नहीं हुई।

षोडशी—तो क्या इच्छा हुई ?

जीवानन्द—रहने दो, उसे तुम आज मत सुनना चाहो। शायद अन्त तक सुनके खुद ही समझ जाओगी, और उस समझनेमे नुकसानके सिवा मेरा फायदा नहीं होगा। मगर, इन लोगोंने जैसा तुम्हे समझाया था असलमे बात वैसी नहीं है, -मैं तुम्हे छोड़कर नहीं भागा।

षोडशी—अपने न भागनेका इतिहास आप ही सुनाइए।

जीवानन्द—मैं बेवकूफ नहीं हूँ, अगर कहूँगा भी तो उसका पूरा नतीजा समझकर ही कहूँगा। तुम्हारी माके इतने बड़े भयानक प्रस्तावपर क्यों राजी हो गया था, जानती हो ? मैंने एक स्त्रीका हार चुराया था;—सोचा था कि रुपये देकर उसे शान्त कर दूँगा। वह तो शान्त हो गई, पर पुलिसका वारण्ट शान्त न

हुआ। छह महीनेके लिए जेल चला गया,—वही जो पिछली रातमें निकल भागा था, उसके बाद फिर लौटनेका मौका ही नहीं मिला।

षोड़शी—(साँस रोके हुए) उसके बाद ?

जीवानन्द—(मुसकराकर) उसके बादका भी हाल बुरा नहीं। जीवानन्दबाबूके नाम और भी एक वारण्ट था। कई महीने पहले रेलगाड़ीसे एक सहयात्री मित्रका बैग उठाकर चम्पत हो गया था। लिहाजा और भी डेढ़ साल! कुल मिलाकर दो साल लापता रहकर बीजगाँवके भावी जमींदार साहबने जब रंगमंचपर पुनः प्रवेश किया तब कहाँ रही अलका, और कहाँ रही उसकी मा !

[दोनों ही कुछ देर तक निस्तब्ध रहते हैं।]

जीवानन्द--फिर एक दफे सभामें जाना है! अलका, तो अब जाता हूँ।

षोड़शी—सभामें आपके लिए बहुत-सा काम पड़ा होगा, गये बिना गुजर नहीं। पर बिना कुछ खाये भी तो न जा सकेंगे।

जीवानन्द—न जा सकूँगा ? तो ले आओ। लेकिन बड़ी बुरी आदत है मुझमें, खाकर फिर हिला नहीं जाता मुझसे।

षोडशी—न जा सकें, तो यहीं आराम कीजिएगा।

जीवानन्द—आराम करूँगा ? अगर कहीं सो गया अलका ?

षोडशी—(हँसकर) उसकी सम्भावना तो है ही। मगर भाग न जाइएगा कहीं। मैं खानेको ले आऊँ।　　[प्रस्थान।

[घरके कोनेमें एक पत्रका टुकड़ा पड़ा था, जीवानन्दकी निगाह उसपर पड़ती है और उसे उठाकर वह पढ़ डालता है। उसका क्षण-भर पहलेका सरस और प्रसन्न चेहरा गम्भीर और अत्यन्त कठोर हो जाता है। षोडशी भोजनका पात्र हाथमें लिये प्रवेश करती है। उसे याद आता है कि आसन नहीं बिछाया गया है, इसलिए वह पात्रको जल्दीसे एक तरफ रखकर आसनके अभावमें कम्बल ही दोहरा-तिहरा करके बिछा देती है; और जैसे ही उसपर अपना एक कपड़ा घरी करके बिछाने लगती है, वैसे ही जीवानन्द बोल उठता है—]

जीवानन्द—यह क्या हो रहा है ?

षोड़शी—आपके बैठनेकी जगह कर रही हूँ। अकेला कम्बल छिंदगा।

जीवानन्द—छिंदगा, मगर ज्यादती तो और भी ज्यादा छिंदगी। खातिरदारी जैसी चीजमें मिठास जरूर है, पर उसका ढकोसला करनेमें न तो मिठास है और न स्वाद ही। इसे बल्कि और किसीके लिए रहने दो।

[षोड़शी बात सुनकर दंग रह जाती है।]

जीवानन्द—(हाथका कागज दिखाकर) फाड़ी हुई चिट्ठी है, पूरी भी नहीं है। जिनको लिखा था, उनका नाम जान सकता हूँ क्या ?

षोड़शी—किसका नाम ?

जीवानन्द—जो दैत्य-वधके लिए चण्डीगढ़में अवतीर्ण होंगे, जो द्रौपदीके सखा हैं, जो—और कहूँ ?

[इस व्यङ्गोक्तिका षोड़शी जवाब नहीं दे सकती, परन्तु उसकी आखोंपरसे क्षण-भर पहलेकी मोहकी यवनिका चार चार होकर फट जाती है।]

जीवानन्द—इस आह्वान-पत्रकी प्रत्येक पंक्ति जिनके कानोंमे अमृत बरसायेगी उनका नाम ?

षोड़शी—(अपनेको संयत करके) उनके नामकी आपको जरूरत ?

जीवानन्द—जरूरत है क्यों नहीं ! पहलेसे मालूम हो जानेसे शायद आत्म-रक्षाकी कोई तरकीब निकाल सकूँ।

षोड़शी—आत्म-रक्षाकी जरूरत तो अकेले आपहीको नहीं है, चौधरी साहब, मुझे भी हो सकती है।

जीवानन्द—हो क्यों नहीं सकती।

षोड़शी—तो उस नामको आप नहीं सुन सकते। कारण, मेरी और आपकी आत्म-रक्षा करनेका उपाय एक ही साथ नहीं हो सकता।

जीवानन्द—अच्छी बात है, सो अगर न हो तो रक्षा पाना मेरे ही लिए आवश्यक है और उसमें रंचमात्र भी त्रुटि न होगी, जान रखना।

[षोडशी निरुत्तर रह जाती है।]

जीवानन्द—तुम जवाब न दो, पर तुम्हारे इस वीर पुरुषका नाम मुझे मालूम न हो सो बात नहीं।

षोड़शी—मालूम क्यों न होगा ! संसारके वीर पुरुषोंमें परस्पर परिचय तो रहना ही चाहिए।

जीवानन्द—सो तो ठीक है। पर इस कापुरुषको बार बार अपमानित करनेका भार तुम्हारे वीर पुरुष सह सकें, तब है। खैर जाने दो, इस चिट्ठीको फाड़ क्यों डाला ?

षोड़शी—इसका जवाब मैं नहीं दूँगी।

जीवानन्द—मगर यह सीधी निर्मल साहबको न लिखकर उनकी स्त्रीको क्यों लिखी गई ? यह शब्द-भेदी बाण चलाना क्या उन्हींका सिखाया हुआ है ?

षोडशी—इसके बाद ?

जीवानन्द—इसके बाद आज मेरा सन्देह जाता रहा। इन मित्रकी बात मैंने औरोंके मुँह सुनी है; पर राय साहबसे जितने ही मैंने प्रश्न किये हैं; उतनी ही वे चुपकी साध गये हैं। आज समझमें आया कि उन्हींका आक्रोश सबसे ज्यादा क्यों है ?

षोडशी—(चौंककर) निर्मलके सम्बन्धमें आपने क्या सुना है ?

जीवानन्द—सभी-कुछ। तुम्हारे चौंकने और गलेकी मीठी आवाज़से मुझे हँसी आनी चाहिए थी, मगर हँस न सका,—यह बात मेरे लिए आनन्द-जनक नहीं है। उस आँधी-मेहमें, अँधेरी रातमें, अकेले उसका हाथ पकड़कर घर पहुँचा देना याद है ? उसके गवाह हैं।—गवाह सुसरे न-जाने कहाँ छिपे रहते हैं पहलेसे, कुछ मालूम ही नहीं हो सकता। मैं जब गाड़ीसे बैग लेकर भागा था, सोचा था किसीने नहीं देखा—

षोडशी—अगर सचमुच ही ऐसा किया हो तो क्या वह ऐसे कोई बड़े दोषकी बात है ?

जीवानन्द—मगर छिपानेकी कोशिश ? चिट्ठीके यह टुकड़े ? खुद ही जरा पढ़के देखो तो सही, क्या मालूम होता है ? मेरी तरह ये भी एक बार तुम्हारा न्याय करने बैठे थे न ? देखता हूँ, तुम्हारा न्याय करनेमें खतरा है।

[इतना कहकर जीवानन्द मुसकरा देता है।
षोड़शी निरुत्तर रहती है।]

जीवानन्द—इसे मैं साथ लिये जाता हूँ। ज़रूरत पड़नेपर यथा-स्थान पहुँचा देनेमें भी त्रुटि न होगी। ये थोड़ी-सी पंक्तियाँ जब मेरी,—पुरुषकी आँखोंको ही धोखा नहीं दे सकीं, तो उम्मीद है कि हैमवतीको भी चकमा न दे सकेंगी।

[षोड़शी निरुत्तर रहती है।]

जीवानन्द—क्यों, बहुत-सी बातें जानता हूँ न ?

षोड़शी—हाँ।

जीवानन्द—तो यह सब सच है न ?

षोड़शी—हाँ, सच है।

जीवानन्द—(आहत होकर) ओ-फ्, सच है ! (टिमटिमाते हुए दीपककी जोतको जरा और भी तेज करके षोड़शीके चेहरेकी तरफ तीक्ष्ण दृष्टिसे देखकर) तो अब तुम क्या करोगी ?

षोड़शी—आप मुझे क्या करनेको कहते हैं ?

जीवानन्द—तुम्हें ? (कुछ देर स्तब्ध रहकर, दीपककी जोतको और भी तेज करके) तो ये लोग सभी जो तुम्हें असती बताकर—

षोड़शी—इन लोगोंके खिलाफ तो मैंने आपसे फरियाद की नहीं। मुझे क्या करना होगा, सो बताइए। कारण दिखानेकी जरूरत नहीं।

जीवानन्द—सो ठीक है ! परन्तु, सभी झूठ बोलते हैं और तुम अकेली ही सत्यवादिनी हो, क्या यही तुम मुझे समझाना चाहती हो अलका ?

[षोड़शी निरुत्तर रहती है।]

जीवानन्द—जवाब तक नहीं देना चाहतीं ?

षोड़शी—(सिर हिलाकर) नहीं।

जीवानन्द—यानी मेरे सामने कैफियत देनेकी अपेक्षा बदनाम होना भी अच्छा समझती हो ? अच्छी बात है, सब-कुछ स्पष्ट मालूम हो गया।

[व्यंगपूर्वक हँसने लगता है।]

षोड़शी—स्पष्ट मालूम हो जानेके बाद मुझे क्या करना होगा, केवल यही बताइए !

[इस उत्तरसे जीवानन्दका क्रोध और अधैर्य सौ-गुना बढ़ जाता है।]

जीवानन्द—क्या करना होगा, सो तुम जानो। मगर मुझे देव-मन्दिरकी पवित्रता बचानी ही होगी। इसकी यथार्थ अभिभावक तुम नहीं, मैं हूँ। पहले क्या हुआ करता था मैं नहीं जानता। मगर अबसे भैरवीको भैरवीकी तरह ही रहना होगा, नहीं तो जाना पड़ेगा।

षोड़शी—अच्छी बात है, यही होगा। यथार्थ अभिभावक कौन है, इस विषयमें मैं बहस नहीं करूँगी। आप लोग अगर समझते हों कि मेरे चले जानेसे मन्दिरकी भलाई होगी, तो मैं चली जाऊँगी।

जीवानन्द—तुम जाओगी, यह ठीक है। क्योंकि, तुम चली जाओ, ऐसी ही व्यवस्था मैं करूँगा।

षोड़शी—क्यों गुस्सा हो रहे हैं, मैं तो सचमुच ही जाना चाहती हूँ। पर आपपर यह भार रहा कि मन्दिरकी वास्तवमें भलाई हो।

जीवानन्द—कब जाओगी ?

षोड़शी—जब हुक्म देंगे। कल, आज, अभी,—

जीवानन्द—मगर निर्मल बाबू ? जमाई साहब ?

षोड़शी—(कातर कण्ठसे) उनका नाम अब मत लीजिए।

जीवानन्द—मेरे मुँहसे उनका नाम तक तुमसे नहीं सहा जाता! अच्छी बात है। लेकिन तुम्हें देना क्या होगा ?

षोड़शी—कुछ भी नहीं।

जीवानन्द—इस घरको भी छोड़ देना पड़ेगा, जानती हो ? यह भी देवीका है।

षोड़शी—जानती हूँ। अगर बन सका, तो कल ही छोड़ दूँगी।

जीवानन्द—कहाँ जाना ठीक किया है ?

षोड़शी—यहाँ नहीं रहूँगी, बस, इससे ज़्यादा कुछ भी तय नहीं किया। एक दिन कुछ जाने बिना ही भैरवी हुई थी, आज बिदा होते समय भी इससे ज्यादा नहीं सोचूँगी। आप यहाँके ज़मींदार हैं, चण्डीगढ़की भलाई-बुराईका भार आपके ऊपर छोड़कर इस अन्तिम बिदाईके समय अब मैं दुबिधा नहीं करूँगी। पर, मेरे पिता बहुत ही कमजोर हैं, उनपर भरोसा करके कहीं आप निश्चिन्त न हो जाइएगा।

जीवानन्द—तुम सचमुच ही चली जाना चाहती हो क्या ?

षोड़शी—और मेरी दुःखी गरीब किसान प्रजा है,—किसी दिन उन्हींका सब-कुछ था,—आज उन जैसा निःस्व निरुपाय गरीब और कोई न होगा। डाकू बताकर बिना कसूर लोगोंने उनको जेलखाने भिजवा दिया है। उनके सुख-दुःखका भार भी मैं आपपर ही छोड़े जाती हूँ।

जीवानन्द—अच्छा, सो होता रहेगा। वे चाहते क्या हैं, बताओ तो ?

षोड़शी—सो वे ही आपको बतायेंगे।

[इतना कहकर सहसा जंगलेमेंसे बाहर देखती है और रस्सीकी अरगनीपरसे अँगोछा और धोती उठा लेती है।]

षोड़शी—मेरा नहाने जानेका समय हो गया—

जीवानन्द—नहानेका समय ? इतनी रातमें ?

षोड़शी—रात अब नहीं है,—अब आप घर जाइए।

[जानेको उद्यत होती है।]

जीवानन्द—(व्यग्र कण्ठमें) पर मेरी तो सभी बातें बाकी रह गईं ?

षोड़शी—रह जाने दीजिए, आप घर जाइए।

जीवानन्द—नहीं। न जाने कहाँ मैं बड़ी भारी गलती कर गया हूँ, अलका, बात मेरी खतम न होनेतक तो मैं—

षोड़शी—नहीं, सो नहीं होनेका, आप घर जाइए। मेरा आपने बहुत नुकसान किया है, इस जीवनका अन्तिम सर्वनाश मैं अब आपको नहीं करने दूँगी।

जीवानन्द—अच्छा, मैं जाता हूँ अलका। [प्रस्थान।

द्वितीय दृश्य

चण्डीगढ़ ग्राम। चरखका स्वाँग।

गीत—१

बड़े फेरमें पड़ गये अबकी भोलानाथेश्वर,
अभिमानी गौरी रानीने कहा न 'प्राणेश्वर!'
बहुत दिनोंमें आये भोला हैं अपनी सुसराल,
सोचा था आयेगी गौरी, पहनें साड़ी लाल।
चन्द्रमुखी हँस-हँसके जब बोलेगी मीठी बानी,
भोलाके तब दर्द-दिलकी मर जायेगी नानी।
बिना कहे क्यों चली आई यों, उसके दिलकी रानी,
इसी बातपर रूठे फिरते, बमभोला अभिमानी।
गौरीने जब देखा अपने शंकरजीका हाल,
कभी मसान, कभी भूतोंमें, हरदम हैं बेहाल।
अबकी शान्त-शिष्ट कर दूँगी, सचमुच होंगे भोले,
भेद सभी खुल जायेंगे तब, बिना किसीके खोले।
भस्म-भभूत रमाके तुमने, दुनिया छानी सारी,
अब गौरीके पाले पड़, बन जाओ प्रेम-पुजारी।

गीत—२

गौरीजीकी विदा कराने खुद आये शंकरजी,
गौरीने तब साफ कह दिया, 'मेरी है नहिं मरजी।'

पाँच साल कर 'पंचागिनि तप' सौंपी थी जननीने
जिसे, उसे तू बाँध न पाई, ऐसा सुना किसीने?
(क्या) किसी सौतके पड़े फेरमें, इससे हुए पराये,
प्रेम-डोरमें बँधे न तुझसे, तेरे ही मनभाये।
(अरी!) फेंकनकी हैं चीज नहीं, वे तेरे भाग-सितारे,
नहा-धुलाके मना-मुनूके, कह दे मुँहसे 'प्यारे!'

तृतीय दृश्य

षोड़शीकी कुटीर

[निर्मलका प्रवेश]

षोड़शी—यह क्या, रातके तीसरे पहर ऐसे अकस्मात् आप यहाँ कैसे निर्मल बाबू?

[निरुत्तर खड़ा रहता है।]

षोड़शी—(हँसकर) अच्छा,—समझ गई। जानेके पहले स्यात छिपके एक बार देखने चले आये हैं, न?

निर्मल—आप क्या अन्तर्यामिनी हैं?

षोड़शी—इसके बिना क्या भैरवीगीरी की जा सकती है निर्मल बाबू! पर यहाँ उजाला नहीं है,—चलिए, मेरी कोठरीमें चलकर बैठिए।

निर्मल—रातको अकेले मुझे कोठरीमें ले जाना चाहती हैं,—आपका साहस तो कम नहीं है!

षोड़शी—और उस दिन रातको अँधेरेमें जब हाथ पकड़के नदी-मैदान पार करती हुई ले गई थी, तब आपको भयके लक्षण दिखाई दिये थे क्या? उस दिन भी तो ऐसे ही अकेले थे।

निर्मल—सचमुच ही आपके साहसकी सीमा नहीं।

षोड़शी—सीमा रह कैसे सकती है निर्मल बाबू, भैरवी ठहरी जो! आइए, भीतर आइए!

निर्मल—नहीं, भीतर अब न जाऊँगा, मुझे अभी जाना है।

षोड़शी—तो फिर यहीं बैठिए।

[दोनों बैठ जाते हैं ।]

षोड़शी—तो फिर आज चला जाना ही तय रहा ?

निर्मल—नहीं, आजका जाना स्थगित रहा। रातको घर जाकर सुना कि आज शामको मन्दिरमें आपका फैसला होगा। उस सभामें मैं मौजूद रहना चाहता हूँ।

षोड़शी—किस लिए ? महज कुतूहल है, या मेरी रक्षा करना चाहते हैं ?

निर्मल—जी जानसे कोशिश करूँगा इसकी।

षोड़शी—अगर हानि हो, कष्ट हो, ससुरके साथ विच्छेद हो, तो भी ?

निर्मल—हाँ, तो भी।

[षोड़शी हँस देती है।]

निर्मल—(मुसकराते हुए) आप तो हँस दीं ! विश्वास नहीं होता ?

षोड़शी—होता है। मगर हँस रही हूँ दूसरी एक बातपर। सुना है, पहलेकी भैरवीयाँ परदेसी आदमियोंको भेड़ बनाकर रखती थीं। अच्छा, भेड़ोंको लेकर वे क्या करती थीं निर्मल बाबू ? चराती फिरती थीं या उन्हें लड़ा-लड़ाकर तमाशा देखा करती थीं ? (बच्चोंकी तरह खूब जोरसे हँस पड़ती है।)

निर्मल—(मजाकमें शामिल होता हुआ खुद भी हँसकर) और हो सकता है, कभी कभी माता चण्डीके सामने बलि चढ़ाकर खाया भी करती हों !

षोड़शी—यह तो डरकी बात है, निर्मल-बाबू !

निर्मल—(हँसकर सिर हिलाता हुआ) डर थोड़ा-बहुत तो है ही।

षोड़शी—थोड़ा-बहुत अच्छा है। हमको भी सावधान कर देना चाहिए।

निर्मल—इसके मानी ?

षोड़शी—मानी सभी बातोंके थोड़े ही होते हैं। (हँसकर) मेहमानकी खातिरदारी तो हो चुकी। हँसी-खुशीसे जितनी कर सकती थी उतनी ही,—उससे ज़्यादा तो पूँजी नहीं है भाई। अब आओ कुछ कामकी बातें कर लें।

निर्मल—कहिए ?

षोड़शी—(गम्भीर होकर) दो आदमी देवताको वंचित करना चाहते हैं, एक राय साहब और दूसरे जमींदार—

निर्मल—और एक आपके पिता।

षोड़शी—पिता !—हाँ, वे भी हैं।

निर्मल—अपने ससुरकी बात तो मैं समझता हूँ और आपके पिताकी बात भी कुछ कुछ समझमें आती है, पर इन जमींदार-प्रभुकी बात कुछ समझमें ही नहीं आती। वे किस लिए आपके साथ दुश्मनी निभा रहे हैं?

षोड़शी—देवीकी बहुत-सी जमीन वे अपनी बताकर बेच देना चाहते हैं। पर मेरे रहते ऐसा हरगिज नहीं हो सकता।

निर्मल—(हँसकर) सो मैं सँभाल लूँगा।

षोड़शी—मगर और भी बहुत-सी बातें हैं जिन्हें शायद आप न सँभाल सकेंगे।

निर्मल—सो कौन-सी बातें हैं?—एक तो आपकी झूठी बदनामी है?

षोड़शी—(शान्त स्वरसे) उसकी मुझे चिन्ता नहीं। बदनामी सच हो चाहे झूठी, उसीको लेकर ही तो भैरवीका जीवन है, निर्मल बाबू। मैं यही बात उन लोगोंसे कहना चाहती हूँ।

निर्मल—(आश्चर्यके साथ) अपने मुँहसे यह कहना तो स्वीकार करनेके बराबर है!

षोड़शी—सो हो सकता है।

निर्मल—मगर वे तो कहते हैं—

षोड़शी—कौन कहते हैं?

निर्मल—बहुत-से कहते हैं कि उस समय, यानी जब मजिस्ट्रेट आये थे उस रातको, आपकी गोदमें ही—

षोड़शी—उन लोगोंने देखा था क्या? हो सकता है, मुझे ठीक याद नहीं; अगर देखा हो तो सच है। उनकी तबीयत उस दिन बहुत ज़्यादा खराब थी, मेरी गोदमें सिर रखकर ही वे पड़े थे।

निर्मल—(क्षण-भर स्तब्ध रहकर) फिर उसके बाद!

षोड़शी—किसी तरह दिन कटे जा रहे हैं, पर उसी दिनसे किसी बातमें मेरा मन नहीं लग रहा है, सभी-कुछ मानों झूठ-सा मालूम हो रहा है।

निर्मल—क्या झूठ-सा?

षोड़शी—सभी कुछ। धर्म, कर्म, व्रत, उपवास, देव-सेवा,—इतने दिनोंका किया-धरा सब-कुछ—

निर्मल—तो किस लिए फिर भैरवीका आसन रखना चाहतीं हो!

षोडशी—ऐसे ही। और अगर आप कहें, इसकी कोई जरूरत नहीं—

निर्मल—नहीं नहीं, मैं कुछ नहीं कहता। अच्छा तो अब मैं चला। आपका न-जाने कितना काम हर्ज कर दिया।

षोडशी—मेहमानकी खातिरदारी, मित्रकी मर्यादा रखना, यह क्या कोई काम नहीं है निर्मल बाबू ?

निर्मल—सवेरा हो आया, अब चलूँ ?

षोडशी—अच्छा जाइए। मेरा भी नहानेका वक्त निकला जा रहा है, मैं भी जाती हूँ।

[दोनोंका प्रस्थान।

[सागर सरदार और फकीरका प्रवेश।]

सागर—नहीं, यह नहीं हो सकता,—हरगिज नहीं हो सकता फकीर साहब। मा शायद कह रही हैं कि सब कुछ छोड़-छाड़के चली जायँगी। आपसे कहता हूँ मैं, ऐसा नहीं हो सकता।

फकीर साहब—क्यों नहीं हो सकता सागर ?

सागर—सो नहीं जानता। मगर जाना नहीं हो सकता। जानेसे हम सब उनके दीन-दुःखी किसान रहेंगे कहाँ ? जीयेंगे कैसे ?

फकीर—पर तुम लोगोंने क्या सुना नहीं कि षोडशी कितनी लज्जा और घृणासे सब त्यागकर जा रही है ?

सागर—सुना है। इसीसे तो औरोंकी तरह हम लोगोंकी भी समझमें नहीं आता कि माने साहबके हाथसे उस दिन रातको जमींदारको बचाया क्यों ?

[क्षण-भर स्तब्ध रहकर]

सागर—समझमें आवे या न आवे फकीर साहब, मगर इतना तो समझता ही हूँ कि जिन्हें मा कहकर पुकारा है, सन्तान होकर हम उनका न्याय करने नहीं बैठेंगे।

फकीर—तुम कुछ लोग न्याय न करो तो क्या चण्डीगढ़में उनके न्याय करनेवाले आदमियोंकी कमी रहेगी सागर ?

सागर—लेकिन वे ही लोग क्या आदमी हैं ? हम उनके लड़के हैं,—हम लोगोंके हृदयके विश्वाससे क्या उन लोगोंका बाहरी न्याय बड़ा हो जायगा, फकीर साहब ? उन लोगोंको क्या हम लोग पहचानते नहीं ? एक दिन जब हम लोगोंका

सर्वस्व छीन लिया था उन लोगोंने,—वह भी तो ऐसी ही सचाई थी, और जब जेलखाने भिजवाया था, तब भी सब ऐसे ही सच्चे गवाहोंके जोरसे ।

फकीर—सो मैं जानता हूँ ।

सागर—लेकिन सब बातें तो आपको मालूम नहीं । हम चचा-भतीजे सजा भुगतकर घर लौटे । हम लोगोंने कहा, मा, हम लोग तो मरे । माने गुस्सेमें आकर कहा, तुम लोग डाकू हो, तुम लोगोंका मर जाना ही अच्छा है । हम लोग रूठकर लौट आये । चचाने कहा, भगवान्, गरीबोंका विश्वास करनेवाला कोई नहीं । दूसरे दिन सबेरे माने हम लोगोंको बुलवाकर कहा, तुम लोगोंके साथ मैंने बड़ा-भारी अन्याय किया है, मुझे तुम लोग क्षमा करो । तुम लोगोंका कोई विश्वास न करे, पर मैं विश्वास करती हूँ । अब भी बीस बीघेके करीब जमीन है मेरी, उसे तुम लोग बर-बाँट लो । चण्डीदेवीका लगान तुम जो चाहो, दिया करना, लेकिन खराब रास्तेपर कभी कदम न रखना, इतनी ही मेरी शर्त है ।

फकीर—लेकिन लोग जो कहते हैं—

सागर—कहा करें । सिर्फ मा जान जायँ कि हम लोगोंका विश्वास जैसाका तैसा ही है, बस । जानते हैं फकीर साहब, हम लोगोंकी वजहसे ही एककौड़ी उनका दुश्मन है, हम लोगोंके कारण ही राय साहब उनके शत्रु हो रहे हैं । और मजा यह कि वे जानते ही नहीं कि किसकी दयासे वे जीते हैं ।

फकीर—पर मुझे तुम लोग क्यों पकड़ लाये ?

सागर—क्यों ? सुना है कि मुसलमान होकर भी तुम उनके गुरुसे भी बड़े हो । तुम्हारे सिवा माको और कोई भी नहीं रोक सकता ।

फकीर—मगर इतना बड़ा अनुचित अन्याय्य निषेध मैं करूँगा क्यों सागर ?

सागर—करोगे आदमीकी भलाईके लिए ।

फकीर—पर षोड़शी तो घरपर नहीं है । अबेर हो गई, मैं भी तो और ठहर नहीं सकता । अब मैं जाता हूँ ।

सागर—नहीं ठहर सकोगे ? मना नहीं करोगे ? मगर इसका नतीजा अच्छा नहीं होगा ।

फकीर—ऐसी बातें जबानपर भी न लाना सागर ।

सागर—मा भी यही बात कहती हैं, ऐसी बात जबानपर भी न लाना सागर । अच्छी बात है, जबानपर न लाऊँगा,—हम लोगोंके मनकी मनमें ही रहे ।

[फकीरका प्रस्थान ।

सागर—संन्यासी फकीर हो तुम, जानते नहीं डकैतोंके हिरदेकी आगको। हम लोगोंका सब-कुछ चला गया है, इसपर मा भी अगर छोड़कर चली गई तो हम बाकी कुछ भी न रक्खेंगे। [प्रस्थान ।

[निर्मल और षोड़शीका प्रवेश]

षोड़शी—बुला ले आई क्या ऐसे ही? छि, छि, खड़े खड़े क्या अंट-संट सुन रहे थे बताइए तो! देवीके मन्दिरमें, उनके आँगनके बीचमें, इकट्ठे होकर कुछ कायर मिलकर न्याय करनेके बहाने दो असहाय स्त्रियोंकी गन्दी बदनामी कर रहे हैं,—उनमें भी एक मर चुकी है और दूसरी अनुपस्थित! आइए, मेरे घरमें।

[दरवाजेपर आसन बिछा था। निर्मलको आदरके साथ बिठाकर षोड़शी वहीं पास ही बैठ जाती है।]

षोड़शी—आपने शायद कहा था कि मेरे मामले-मुकद्दमेका सारा भार आप अपने ऊपर ले लेंगे। क्या यह सच है?

निर्मल—हाँ, सच है।

षोड़शी—मगर क्यों लेंगे?

निर्मल—शायद आपके प्रति अन्याय हो रहा है इसलिए।

षोड़शी—मगर और कुछ तो नहीं समझ रहे हैं? (इतना कहकर मुसकरा देती है) जाने दीजिए, सब बातोंका जवाब देना ही होगा ऐसा कुछ शास्त्रका वचन नहीं है। खासकर इस जटिल शास्त्रका, है न? अच्छा इसे जाने दीजिए। मुकद्दमेका भार तो जैसे आपने ले लिया, लेकिन यदि हार गई तो उसका भार कौन लेगा? तब पीछे कदम तो न रक्खेंगे?

निर्मल—नहीं, तब भी नहीं।

षोड़शी—ओफ-हो! परोपकारका कैसा आडम्बर है! (हँसकर) अगर मैं हेम होती, तो ऐसी परोपकार-वृत्तिका खातमा ही कर देती। मैं उतनी भली-मानस नहीं,—मेरे निकट धोखा-धड़ी नहीं चलती। रात-दिन आँखों-ही-आँखोंमें रखा करती।

निर्मल—(विस्मय, भय और आनन्दसे) आँखों-ही-आँखोंमें रखनेसे ही क्या रक्खा जा सकता है षोड़शी? इसका बन्धन जहाँ शुरू होता है, आँखोंकी दृष्टि तो वहाँ पहुँचती ही नहीं, इस बातको क्या आज तक जान नहीं सकीं तुम!

षोड़शी—जान क्यों न सकी ! (हँस देती है। बाहर किसीके आनेकी आहट सुनकर गरदन उठाकर) लीजिए, आ गये वे।

निर्मल—कौन ? फकीर साहब ?

षोड़शी—नहीं, जमींदार साहब। कह दिया था, सभा भंग होनेपर जाते वक्त मेरी कुटियामें एक बार आकर पद-धूलि दीजिएगा। इसीसे शायद देने आये हैं।

निर्मल—(विरक्ति और संकोचसे जड़वत् होकर) तो आपने यह बात मुझसे कही क्यों नही ?

षोड़शी—खूब ! एक बार 'तुम', एक बार 'आप' ! (हँसकर) डरनेकी कोई बात नहीं, वे बहुत शरीफ आदमी हैं: लड़ते नहीं। इसके सिवा आपसे उनका परिचय भी नहीं,—यह भी एक लाभ है। (दरवाजेके पास जाकर स्वागत करते हुए) आइए।

जीवानन्द—(प्रवेश करते ही ठिठककर खड़े होकर) आप ? निर्मल बाबू हैं शायद ?

षोड़शी—हाँ, 'आपके मित्र' कहकर परिचय दिया जाय तो शायद अत्युक्ति न होगी।

जीवानन्द—(हँसकर) अजीब बात है ! मित्र नहीं तो क्या ? इन्हीं लोगोंकी कृपासे तो टिका हुआ हूँ; नहीं तो मामाकी जमींदारी पाने तक जैसी जैसी कार्रवाइयाँ की हैं, उससे चण्डीगढ़के शान्ति-कुंजके बदले अब तक अण्डमानके श्रीघरमें जाकर रहना पड़ता।

षोड़शी—चौधरी साहब, वकील-बैरिस्टर बड़े आदमी हैं इसलिए क्या सारी वाहवाही उन्हें ही मिलेगी ? अण्डमान वगैरह बड़े मामलोंमें न सही, पर छोटे हैं इसलिए इस देशके श्रीघर भी तो मनोरम स्थान नहीं,—गरीब होनेसे क्या भैरवियोंको जरा-सा भी धन्यवाद नहीं मिल सकता ?

जीवानन्द—(लज्जित होकर) धन्यवाद पानेका समय होते ही वह भी मिलेगा।

षोड़शी—(हँसकर) यही, जैसे सभामें खड़े होकर अभी हाल ही एक बार दे आये हैं !

[जीवानन्द स्तब्ध हो जाता है।]

षोड़शी—निर्मल बाबू न होते तो आज मैं आपसे खूब लड़ती। छिः यह

क्या किसी भी पुरुषके लिए शोभा देता है ? इसके सिवा जरूरत क्या थी इसकी, बताइए तो ? उस दिन इसी घरमें बैठकर तो आपसे कहा था, आप मुझे जो आज्ञा देंगे मैं उसका पालन करूँगी। आप भी अपना हुक्म साफ साफ दे गये थे। यह लीजिए सन्दूककी चाबी और यह लीजिए हिसाब। (आँचलसे सन्दूककी चाबी खोलकर और ताकपरसे एक खारुएमें मढ़ा मोटा खाता उतारकर जीवानन्दके पैरोंके पास रख देती है) माताके जो कुछ अलंकार हैं, जो भी कुछ कागजात हैं, सब आपको सन्दूकमें धरे मिलेंगे और एक कागज इस खातेमें और मिलेगा, जिसमें मैंने भैरवीका सारा दायित्व और कर्तव्य छोड़ते हुए दस्तखत कर दिये हैं।

जीवानन्द—(अविश्वास करके) कहती क्या हो ! मगर त्याग किया किसके पास ?

षोडशी—उसीमें लिखा है, देख लीजिएगा।

जीवानन्द—अगर यही बात है तो चाबियाँ उन्हींको क्यों नहीं दे दीं ?

षोडशी—उन्हींको तो दी हैं।

जीवानन्द—(मलिन मुख और संदिग्ध कण्ठसे) मगर, मैं तो इन्हें ले नहीं सकता षोडशी। खातेमें लिखी हुई चीजोंसे सन्दूककी चीजोंका मेल होगा, इस बातपर मैं कैसे विश्वास कर लूँ ? तुम्हें जरूरत हो, तो तुम पाँच पचोंके सामने समझा देना।

षोडशी—(गरदन हिलाकर) मुझे इसकी जरूरत नहीं। मगर चौधरी साहब, आपका भी यह कहना चल नहीं सकता। आँखे मीचकर जिसके हाथसे जहर लेकर खानेकी हिम्मत हुई थी, उसके हाथसे आज चाबी लेनेकी हिम्मत नहीं पड़ती, इस बातको मैं नहीं मानती। लीजिए, थामिए।

[खाता और चाबियोंका गुच्छा उठाकर एक तरहसे
जबरदस्ती जीवानन्दके हाथमें दे देती है।]

षोडशी—आज मैं जी गई। (कोमल कण्ठसे) सिर्फ एक भार आपपर और छोड़ जाऊँगी, वह है मेरे गरीब-दुखी किसानोंका भविष्य। मैं सौ सौ बार चाहनेपर भी उनकी भलाई नहीं कर सकी हूँ,—आप आसानीसे कर सकते हैं। (निर्मलके प्रति) मेरी बातचीत सुनकर आप क्या आश्चर्यमें पड़ गये हैं निर्मल बाबू ?

निर्मल—(सिर हिलाकर) आश्चर्य नहीं, मैं लगभग अभिभूतकी-सी स्थितिमें आ पड़ा हूँ। भैरवीका आसन त्याग कर आपने जो इस बीचमें त्याग-पत्रपर दस्तखत तक कर-कराके सब काम तय कर रक्खा है, इसकी खबर तो मुझे आपने जरा भी नहीं लगने दी ?

षोड़शी—मैं अपनी बहुत-सी बातें आपसे नहीं कह पाई हूँ, मगर एक दिन शायद आप सभी-कुछ जान जायँगे। संसारमें सिर्फ एक ही आदमी ऐसे हैं जिनसे मैंने सभी बातें कह दी हैं, वे हैं मेरे फकीर साहब।

निर्मल—ये सलाहें शायद उन्हींने दी होंगी ?

षोड़शी—नहीं, वे अभीतक इस बारेमें कुछ नहीं जानते। और यह, जिसे आप त्याग-पत्र कह रहे हैं, मेरी कुछ दिन पहलेकी रचना है। जिन्होंने इस काममें मुझे प्रवृत्ति दी है, सिर्फ उन्हींका नाम मैं संसारमें सबसे छिपाये रक्खूँगी।

जीवानन्द—मालूम होता है जैसे घर बुलाकर मेरे साथ एक बड़ा भारी मजाक कर रही हो, षोड़शी। इसपर विश्वास करना तो मेरे लिए उस 'मॉरफिया' खानेसे भी कठिन मालूम हो रहा है।

निर्मल—(हँसकर जीवानन्दकी तरफ देखता हुआ) आप तो सिर्फ कुछ कदम ही पैदल आकर यह तमाशा देख रहे हैं, मगर मुझे काम-काज, घर-द्वार, सब कुछ छोड़के यह तमाशा देखना पड़ रहा है। और यह अगर सच हो तो आप जो चाहते थे, कमसे कम वह पा गये; पर मेरे भाग्यमें तो सोलहों-आने नुकसान ही है। (षोड़शीसे) सचमुच, यह सब आपका मजाक तो नहीं है ?

षोड़शी—नहीं निर्मल बाबू। मेरी और मेरी माकी बदनामीसे सारा देशका देश छा गया है, सो यह क्या मेरे लिए हँसी मजाकका समय है ? मैं सचमुच ही छुट्टी ले रही हूँ।

निर्मल—तो बहुत ही दुःखमें पड़कर आपको यह काम करना पड़ा। मैं आपको शायद बचा भी सकता; मगर, क्यों आपने वैसा नहीं होने दिया, मैं समझ गया। जायदाद बच सकती थी, पर उससे बदनामीकी लहर और भी जोरोंसे बढ़ जाती। उसे रोकनेकी ताकत मुझमें नहीं थी।

[कनखियोंसे जीवानन्दकी ओर देखता है।]

निर्मल—तो फिर अब आपने क्या करनेका निश्चय किया है ?

षोड़शी—सो आपको मैं पीछे जताऊँगी।

निर्मल—कहाँ रहेंगी ?

षोड़शी—इसकी खबर भी मैं आपको पीछे दूँगी।

निर्मल—(अपनी हाथ-घड़ी देखकर) दस बज गये, रात ज्यादा हो गई। अच्छा तो, जाता हूँ। मेरी अब शायद कोई जरूरत न होगी ?

षोड़शी—इतनी बड़ी हिमाकतकी बात भला कैसे कह सकती हूँ निर्मल बाबू ? पर हाँ, मन्दिरके विषयमें शायद अब मुझे आपको तकलीफ देनेका काम न पड़ेगा।

निर्मल—हम लोगोंको जल्दी भूल न जायँगी, इतनी उम्मीद तो कर सकता हूँ।

षोड़शी—(सिर हिलाकर) नहीं, भूलूँगी नहीं।

निर्मल—हैम आपको बहुत चाहती है। अगर फुरसत मिले, तो कभी कभी एक-आध बार खबर ले लिया कीजिएगा। [प्रस्थान।]

जीवानन्द—इस भले आदमीको ठीकसे समझ न सका।

षोड़शी—न समझनेसे भी आपका कोई नुकसान न होगा।

जीवानन्द—मेरा न हो, तुम्हारा तो हो सकता है। याद रखनेके लिए कैसी व्याकुल प्रार्थना कर गया है !

षोड़शी—सो सुन ली है। मगर मैं उनको जितना जानती हूँ वे उससे आधा भी मुझे अगर जानते तो आज इतनी बड़ी बहुलता-पूर्ण प्रार्थना उन्हें न करनी पड़ती।

जीवानन्द—अर्थात् ?

षोड़शी—अर्थात् यह जो चण्डीगढ़का भैरवी-पद फटे कपड़ेकी तरह आसानीसे छोड़कर जा रही हूँ, सो इसकी शिक्षा मुझे कहाँसे मिली, आप जानते हैं ? इन्हीं लोगोंसे। स्त्रियोंके लिए यह कितनी बड़ी व्यर्थकी चीज़ है, कितना झूठ है, सो समझी हूँ सिर्फ हैमको देखकर। मगर, इसकी हवा तकका उन्हें कभी पता न लगेगा।

जीवानन्द—फिर भी, यह पहेली पहेली ही रह गई अलका। एक बात साफ साफ पूछनेमें मुझे बड़ी शरम आ रही है; पर अगर पूछ सकता, तो क्या तुम उसका सच-सच जवाब दे सकतीं ?

षोड़शी—(हँसकर) आप अगर कोई एक आश्चर्यजनक काम कर सकते, तब मैं भी वैसा ही कोई एक अद्भुत काम कर सकती या नहीं, सो तो मैं नहीं

जानती,—पर इतना मैं समझ गई हूँ कि आपको कोई आश्चर्यजनक काम करनेकी जरूरत नहीं। बदनामी सबने मिलकर उड़ाई है, इसीलिए उसे सच करके उठा लेना होगा, इसके कुछ मानी नहीं होते। मैं किसी भी बातके लिए किसीका भी आश्रय न लूँगी। मेरे पति हैं, किसी भी लोभसे मैं इस बातको भूल नहीं सकती। यही भयानक प्रश्न ही न आपको शरममें डाल रहा था चौधरी साहब ?

जीवानन्द—तुम मुझे चौधरी साहब क्यों कहा करती हो ?

षोड़शी—तो क्या कहा करूँ ? हुजूर ?

जीवानन्द—नहीं। मेरा जो नाम है—जीवानन्द बाबू।

षोड़शी—अच्छी बात है, भविष्यमें ऐसा ही होगा। मगर रात ज्यादा हुई जा रही है, आप घर नहीं जा रहे हैं ? आपके आदमी सब कहाँ हैं ?

जीवानन्द—मैंने उन्हें घर रवाना कर दिया है।

षोड़शी—अकेले घर जानेमें आपको डर नहीं लगेगा ?

जीवानन्द—नहीं, मेरे पास पिस्तौल है।

षोड़शी—तो उसीको लेकर घर जाइए, मुझे बहुत काम है।

जीवानन्द—तुम्हें होगा, पर मुझे नहीं है। मैं अभी नहीं जाऊँगा।

षोड़शी—(तीव्र दृष्टिसे, पर शान्त स्वरमें) मैं आदमी बुलाकर आपके साथ किये देती हूँ, वे आपको घर तक पहुँचा देंगे।

जीवानन्द—(लज्जित होकर) बुलाना किसीको न होगा, मैं खुद ही चला जा रहा हूँ। जानेको मेरी तबीयत नहीं होती। मैं सिर्फ इसीसे कह रहा था। तुम क्या सचमुच ही चण्डीगढ़ छोड़कर चली जाओगी अलका ?

षोड़शी—(गरदन हिलाकर) हाँ।

जीवानन्द—कब जाओगी ?

षोड़शी—क्या मालूम, शायद कल ही जा सकती हूँ।

जीवानन्द—कल ? कल ही जा सकती हो ? (बिलकुल स्तब्ध रहकर) आश्चर्य है ! आदमीको अपना मन समझनेमें ही कितनी गलती होती है। जिससे तुम यहाँसे चली जाओ, मैंने यही कोशिश की है जी-जानसे,—फिर भी, तुम चली जाओगी, यह सुनते ही मेरी आँखोंके सामने सारी दुनिया ही मानो सूख गई। तुम्हें निकाल देनेसे जो जमीन कर्जके मारे बेचनी पड़ी है उसके बारेमें कोई गड़बड़ी

न होगी,—कुछ नक़द रुपये भी हाथ लगेंगे, और,—और तुम्हें जो हुक्म दूँगा उसे करनेको तुम बाध्य होगी, बस, इस एक ही पहलूको देखा मैंने। मगर इसका एक दूसरा पहलू भी था: अपनी इच्छासे तुम सब-कुछ त्यागकर मेरे ही ऊपर सारा बोझा लादकर जा रही हो, सो मैं उसे ढो सकूँगा या नहीं, इस बातका मुझे स्वप्नमे भी खयाल न आया। अच्छा, अलका, ऐसा भी तो हो सकता है कि मेरी तरह तुमसे भी गलती हो रही हो,—तुम्हें भी अपने मनकी ठीक खबर न मिली हो! जवाब क्यो नहीं देती?

षोड़शी—जवाब ढूँढ़े मिल नही रहा है। सहसा आश्चर्य होता है कि यह क्या आपकी बात है!

जीवानन्द—तो, इतना तो बताओ कि वहाँ तुम्हारी गुजर कैसे होगी?

षोड़शी—यह अत्यन्त अनावश्यक कुतूहल है आपका, चौधरी साहब!

जीवानन्द—सो तो है, अलका, सो तो है। आज मैं अपना आवश्यक-अनावश्यक तुम्हें समझाऊँ किस चीजसे?

[बाहरसे पुजारीकी खाँसी और पैरोंकी आहट सुनाई देती है। पुजारी प्रवेश करता है।]

पुजारी—मा, सबके सामने मन्दिरकी चाबी मै तारादास महाराजके हाथमें सौंप आया। राय साहब, शिरोमणिजी आदि सब लोग मौजूद थे।

षोड़शी—ठीक ही हुआ। तुम जरा खड़े रहो, मै सागरके यहाँ जाऊँगी जरा।

जीवानन्द—तो फिर इन सबको भी तुम राय साहबके पास भेज देना।

षोड़शी—नही, सन्दूककी चाबी और किसीके हाथ देनेमे मुझे विश्वास नहीं होगा।

जीवानन्द—तो क्या विश्वास होगा सिर्फ मुझहीपर?

[षोड़शी कोई उत्तर न देकर जीवानन्दके पैरोंके पास सिर झुकाकर प्रणाम करती है। फिर उठकर आश्चर्यमे डूबे हुए पुजारीसे कहती है।]

षोड़शी—चलो बेटा, अब देर मत करो।

पुजारी—चलो मा, चलो।

[पुजारी और षोड़शीके चले जानेपर अकेला जीवानन्द उस सुनसान कुटियाके आँगनमें स्तब्ध खड़ा रहता है।]

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

नाट्य-मन्दिर

[चण्डी-मन्दिरके प्राङ्गणमें स्थित नाट्य-मन्दिरका एक अंश। समय तीसरा पहर। शिरोमणिजी, जनार्दन राय, तथा और भी गाँवके दो-चार भले आदमी उपस्थित हैं।]

शिरोमणि—(आशीर्वादके ढंगपर दाहना हाथ उठाकर जनार्दनके प्रति) आशीर्वाद देता हूँ दीर्घजीवी होओ भाई, संसारमें आकर बुद्धि तो तुम्हींने पाई है।

जनार्दन—(झुककर पाँव छूते हुए) आज इसी मामलेमें निर्मलको जरा फटकार सुनानी पड़ी शिरोमणिजी, मन आज कुछ अच्छा नहीं है।

शिरोमणि—अच्छा न रहनेकी बात ही है। पर यह एक तरहसे अच्छा ही हुआ, भाई साहब। अब बेटाजीको होश आ जायगा कि ससुर और बड़े-बूढ़ोंके विरुद्ध चलनेसे क्या होता है। और यह तो होना ही था। सर्व मंगलमयी चण्डी-माताकी इच्छा ठहरी!

एक भला आदमी—सब-कुछ माताकी इच्छा है। नहीं तो क्या षोड़शी भैरवी बिना कुछ कहे-सुने यों ही चली जाती!

शिरोमणि—निःसन्देह। मन्दिरकी चाबी तो पुजारीके पाससे किसी तरह ले ली गई; पर असल चाबी तो, सुनता हूँ, जा पड़ी है जमींदारके हाथ। बेटा पूरा शराबी है। देखना भाई साहब, अन्तमें माताके सन्दूककी सोने-चाँदीकी सब चीजें कलवारके सन्दूकमें न चली जायँ। पापकी फिर तो सीमा ही न रहेगी।

जनार्दन—इसका तो खयाल ही नहीं किया गया!

शिरोमणि—नहीं, मगर अब सहजमें दे दे तब है। दस दिन बाद शायद कह बैठेगा, 'कहाँ, सन्दूकमें तो कुछ था नहीं!' मगर हम लोग तो सभी जानते हैं भाई साहब, षोड़शीने और चाहे जो कुछ किया हो, माताकी सम्पत्ति नहीं चुराई,—एक पाई-पैसा तक नहीं।

[बहुतसे लोग इस बातको मंजूर करते हैं ।]

दूसरा भला आदमी—इससे तो बल्कि वही अच्छी थी ।

शिरोमणि—चाबी बहुत ही जल्दी हाथ लगनी चाहिए ।

बहुतसे—हाँ, चाहिए, चाहिए, जल्दी हाथ लगनी चाहिए ।

पहला भला आदमी—मैं कहता हूँ कि चलिए हम सब मिलकर जायँ जमींदार साहबके पास । कहें जाकर कि चाबी दीजिए, क्या है क्या नहीं सो मिलाकर देख लें जरा ।

दूसरा भला आदमी—मेरी भी यही राय है ।

पहला भला आदमी—कल दिनके तीसरे पहर,—जब हुजूर सोतेसे उठकर शराब पीने बैठे हों, मिजाज खुश हो,—ठीक उसी वक्त ।

बहुतसे—ठीक है, ठीक है, यही ठीक रहेगा ।

शिरोमणि—(डरते हुए) लेकिन ज़्यादा शराब पीये हों, तो उस समय जाना ठीक न होगा । तुम्हारी क्या राय है जनार्दन ?

[अकस्मात् सब लोगोंमें एक चांचल्य दिखाई देता है । एक कहता है, 'खुद हुजूर आ रहे हैं जो ! ' दूसरे ही क्षण जीवानन्द और प्रफुल्ल प्रवेश करते हैं । जो लोग बैठे थे, स्वागतके लिए उठ खड़े होते हैं । जीवानन्द नाट्य-मन्दिरकी सीढ़ियोंपर बैठना चाहते हैं, इतनेमें सब-कोई एक साथ बोल उठते हैं, " आसन, आसन जल्दीसे एक आसन ले आओ कोई ! "]

जीवानन्द—(बैठकर) आसनकी जरूरत नहीं ।—देवीका मन्दिर है, यहाँ तो सभी जगह आसन ही बिछा है ।

जनार्दन—इसमें क्या सन्देह ! यह आपहीके लायक बात है ।

[प्रफुल्ल सीढ़ीके एक तरफ जा बैठता है और उसके हाथमें जो अखबार है, उसीको खोलकर चुपचाप पढ़ने लगता है ।]

शिरोमणि—यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी । बादल चाहते ही पानी । आज ही दोपहरको हम लोगोंने हुजूरके पास जानेका निश्चय किया था, मगर कहीं हुजूरकी नींदमें खलल न पड़े, यही सोचकर—

जीवानन्द—नहीं गये ? किन्तु हुजूर तो दिनको सोते नहीं ।

शिरोमणी—किन्तु हम लोग तो सुनते हैं हुजूर—

जीवानन्द—सुनते हैं ? सो, आप लोग बहुत-सी बातें सुना करते हैं जो सच

नहीं होतीं, और बहुत-सी बातें ऐसी कहा करते हैं जो झूठ होती हैं। जैसे कि मेरे सम्बन्धमें भैरवीकी बात—

[यह कहकर वक्ता हँस देते हैं किन्तु श्रोताओंका दल ठिठक कर एकबारगी संकुचित हो जाता है।]

जनार्दन—मन्दिरका झगड़ा इतनी आसानीसे निबट जायगा, इसकी मैंने आशा ही नहीं की थी। निर्मल जिस ढंगसे टेढ़ा पड़ गया था—

जीवानन्द—वे सीधे किस तरह हुए?

शिरोमणि—(खुश होकर दर्पके साथ) सब-कुछ माताकी इच्छा है हुजूर, सीधा तो होना ही पड़ेगा। पापका भार अब उनसे सहा नहीं जा रहा था।

जीवानन्द—ऐसा ही होगा। इसके बाद?

शिरोमणि—मगर पाप तो दूर हो गया, अब,—कहो न जनार्दन, हुजूरको सब समझाके बताओ न।

जनार्दन—(चौंककर) मन्दिरकी चाबी तो हम लोगोंने अपने सामने ही खड़े होकर तारादास महाराजको सँभलवा दी है। आज उन्हींने सबेरे माताका द्वार खोला था, मगर, सन्दूककी चाबी, सुना है कि, षोडशीने हुजूरके हाथ सौंप दी है।

जीवानन्द—सो तो दी है। जमा-खर्चका खाता भी एक दिया है।

शिरोमणि—बेटी अभी तो मौजूद है, पर कब कहाँ चल देगी कोई ठीक थोड़े ही है।

जीवानन्द—(क्षण-भर वृद्ध शिरोमणिके मुँहकी तरफ देखकर) लेकिन इसके लिए आप लोगोंको घबराहट किस बातकी? उसे भगा देना भी तो जरूरी ही है। क्या कहते हैं रायसाहब?

जनार्दन—दलील-दस्तावेजें, कीमती चीजें, देवीके अलंकार आदि जो कुछ हैं, सो गाँवके बुजुर्गोंको सब मालूम हैं। शिरोमणिजीका कहना है कि षोडशीके रहते रहते ही उन सबको मिला लेना अच्छा है। शायद—

जीवानन्द—शायद नहीं हों? यही न? मगर न होनेसे आप लोग वसूल कैसे करेंगे?

जनार्दन—(इसका कोई जवाब ढूँढ़े नहीं पाते हैं। अन्तमें कहते हैं—) क्या जाने,—फिर भी मालूम तो हो जायगा, हुजूर।

जीवानन्द—सो हो जायगा। पर सिर्फ मालूम हो जानेसे लाभ क्या?

शिरोमणि—(एक भले आदमीसे चुपकेसे) लो, हो गया !

जनार्दन—आखिर किसी दिन तो मालूम करना ही होगा, हुजूर !

जीवानन्द—सो होगा । मगर आज तो मुझे फुरसत नहीं है, रायसाहब ।

शिरोमणि—(व्यग्र होकर) हम लोगोंको फुरसत है, हुजूर । चाबी जनार्दन भाई साहबके हाथ दे देनेसे ही हम लोग सब मिलाके देख सकते हैं । हुजूरकी भी किसी तरहकी जिम्मेवारी न रहेगी,—क्या है क्या नहीं, सो उसके भागनेके पहले ही सब मालूम हो जायगा । क्या कहते हो भाई साहब ? क्या कहते हो जी तुम सब ? ठीक है या नहीं ?

[सभी इस प्रस्तावपर सम्मति देते हैं, सिर्फ नहीं देते वे जिनके हाथमें चाबी है ।]

जीवानन्द—(जरा हँसकर) जल्दी क्या है शिरोमणिजी,—अगर कुछ गायब भी हो गया हो, तो उस भिखारिनसे तो कुछ मिल नहीं सकता । आज रहने दो, जिस दिन मुझे फुरसत होगी, उस दिन आप लोगोंको खबर भेज दूँगा ।

[मन-ही-मन सब क्रुद्ध हो जाते हैं ।]

जनार्दन—(उठके खड़े होकर) मगर जिम्मेवारी तो एक—

जीवानन्द—सो तो ठीक बात है, राय साहब । जिम्मेदारी तो एक रही ही मेरे ऊपर ।

[सब-कोई उठके खड़े हो जाते हैं । चलते चलते जमींदारके कानोंसे दूर पहुँचकर]

शिरोमणि—(जनार्दनको मसकते हुए) देखा भाईसाहब, इस शराबीका रंग-ढंग समझना ही मुश्किल है । बात क्या करता है जैसे पहेली । शराबमें चूर हो रहा है । जीयेगा नहीं ज़्यादा दिन ।

जनार्दन—हूँ । जिस बातका डर था सो ही हुआ मालूम पड़ता है ।

शिरोमणि—अब गया सब कलवारकी दूकानमें ! छोकरी जाते वक्त अच्छे चक्करमें डाल गई !

एक भला आदमी—हुजूर तो अब चाबी देनेसे रहे ।

शिरोमणि—अब ? अब माँगने गये तो गरदन पकड़के शराब पिलाकर तब छोड़ेगा । (बात कहते ही सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठता है ।)

[सबका प्रस्थान ।

प्रफुल्ल—(अखबारपरसे निगाह उठाकर) भइया, फिर क्यों एक नई आफत मोल ले ली ? चाबी उन लोगोंको सौंप देनेसे ही किस्सा खतम हो जाता।

जीवानन्द—होता नहीं प्रफुल्ल, हो जाता तो दे देता। पीछे कोई दुर्घटना न हो जाय, इसीसे तो उसने कल रातको मेरे हाथमें चाबी सौंपी है।

प्रफुल्ल—सन्दूकमें है क्या ?

जीवानन्द—(हँसकर) क्या है ? आज सबेरे वही तो खातेमें देख रहा था। है—मुहरें, रुपये, हीरे, पन्ने, मोतीके हार, मुकट, तरह-तरहके जड़ाऊ गहने, दलील-दस्तावेज,—इसके सिवा सोने-चाँदीके बरतन भी कम नहीं हैं। कितने दिनोंसे इकट्ठी हो रही है इस छोटेसे चण्डीगढ़की देवीकी सम्पत्ति,—इतनी सम्पत्तिकी मैंने स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की थी। चोरी-डकैतीके डरसे भैरवियाँ शायद किसीको जानने भी न देती होंगी।

प्रफुल्ल—(डरकर) कहते क्या हैं ! उसकी चाबी आपके पास है ! इकलौता बेटा और डाइनके हाथ ?

जीवानन्द—निहायत झूठ नहीं कह रहे हो भाई, इतने रुपयोंके मामलेमें तो मैं अपनेपर भी विश्वास नहीं कर सकता था। और मजा यह कि मैंने माँगा नहीं। जितना ही उसपर दबाव डाला जनार्दनको देनेके लिए, उतना ही उसने नामंजूर करके मेरे ही हाथमें जबरदस्ती चाबी दे दी।

प्रफुल्ल—इसका कारण ?

जीवानन्द—शायद उसने सोचा होगा, इस बदनामीके बाद फिर ऊपरसे अगर चोरीका कलंक भी लगे, तो उससे सहा न जायगा। इन लोगोंको वह पहचान गई थी।

प्रफुल्ल—मगर आपको वह नहीं पहचान सकी।

जीवानन्द—(हँस देता है, पर उस हँसीमें आनन्द नहीं) यह दोष उसका है, मेरा नहीं। उसके सम्बन्धमें और चाहे जितना भी अपराध किया हो मैंने, पर अपनेको पहचानने न देनेका कसूर नहीं किया। लेकिन आश्चर्यमय है यह दुनिया, और उससे भी बढ़कर आश्चर्यपूर्ण है आदमीका मन। यह किस बातसे क्या तय कर लेता है, कुछ कहा नहीं जा सकता। उसकी युक्ति क्या है जानते हो भाईसाहब ? वह जो उस दिन रातको उसके हाथसे मॉरफिया लेकर आँखें मीचे पी लिया था, वही उसके लिए सब तर्कोंसे बड़ा

तर्क—सब विश्वासोंसे बड़ा विश्वास है। मगर उस रातको तो इसके सिवा और कोई उपाय ही न था,—उसके सिवा और था ही कौन; जिसका मुँह ताकता! इस बातको षोडशी बिलकुल ही भूल गई है। सिर्फ एक बात उसके मनमे समाई हुई है कि जो अपने प्राण बिना किसी संशयके उसके हाथ सौंप सका है, उसपर भला कैसे अविश्वास किया सकता है! बस, जो कुछ था, सब आँख मीचकर मेरे हाथ सौंप दिया। प्रफुल्ल, दुनियाके बड़े बड़े चालाक आदमी भी कभी-कभी खतरनाक भूल कर बैठते हैं, नही तो दुनिया बिलकुल ही मरुभूमि हो जाती,—कहीं रसकी भाफ तक न टिकने पाती।

प्रफुल्ल—बात तो बिलकुल ठीक है भाई साहब। इस लिए, जल्दीसे खाता जला डालिए और तारादास महाराजको बुलाकर डाँट-फटकार दीजिए और जमा की हुई मुहरोंसे अगर सालोमन साहबका कर्जा चुक जाय, तो रसकी सिर्फ भाफ ही नही, मूसलधार बरसा भी शुरू हो सकती है।

जीवानन्द—प्रफुल्ल, इसी लिए तो मै तुम्हे इतना पसन्द करता हूँ।

प्रफुल्ल—(हाथ जोड़कर) इस पसन्दगीको अब जरा कम करना होगा, भाई साहब। रसका सोत आपका कभी न निबटनेवाला बना रहे, मगर मुसाहिबी करते करते इस गुलामके गलेकी नली तक सूखके लकड़ी हो गई है;—अब जरा एक बार बाहर जाकर थोड़ी-बहुत दाल-रोटी जुटाना है। कल-परसो तक मैंने बिदा ले ली समझिए।

जीवानन्द—(हँसकर)—एकबारगी ले ली? लेकिन इसे लेकर अब तक कितनी बार ले चुके?

प्रफुल्ल—कोई चार बार। (हँस देता है) भगवानने मुँह दिया था, सो बड़े आदमियोंका प्रसाद खाते-खाते ही दिन बीत गये। बीच-बीचमें इससे दो-चार बड़ी-बड़ी बातें भी अगर न निकाल पाया, तो इसकी जात मारी जायगी। इसमें ऐसा-कुछ अपराध भी नही है भाई साहब! बहुत दिनोंसे आप लोगोंके पानीको (!) कभी ऊँचा और कभी नीचा बताकर इस देहमे सिर्फ चरबी-मांस ही भरता रहा हूँ, सचमुचका खून इसमें नामको भी बाकी नहीं रक्खा। आज सोचता हूँ एक काम करूँगा। शामकी धुँधली छायामे अपनेको छुपाकर चटसे भैरवी महाराजिनकी मुट्ठी-भर पाँवकी धूल ले लूँगा। आपकी भली-बुरी चीजें ही तो आज तक पेटमें भरता रहा हूँ, इसके बिना वे हजम जो न होंगी, पेटमें लोहेकी तरह छिदेंगी।

जीवानन्द—(हँसनेकी कोशिश करके) आज तुम्हारे उच्छ्वासमें कुछ ज्यादती हो रही है प्रफुल्ल !

प्रफुल्ल—(हाथ जोड़कर) तो ठहरिए भाई साहब, इसे खतम ही कर लूँ। मुसाहिबीकी पेन्शनके तौरपर उस दिन अपनी वसीयतमें जो पाँचेक हजार रुपया लिख रक्खा है, उसपर कृपा करके कलमकी एक लकीर खींच रखिएगा,—चण्डीके रुपये हाथ लगनेपर मुसाहिबोंकी कमी न रहेगी, लिहाजा मुझे दान करके इतने रुपयोंकी कुगत न कीजिएगा।

जीवानन्द—तो अबकी बार मुझे तुमने सचमुच ही छोड़ दिया ?

प्रफुल्ल—आशीर्वाद दीजिए कि इतनी-सी सुमति मुझमें अन्त तक बनी रहे। मगर वे जा कब रही हैं ?

जीवानन्द—मालूम नहीं।

प्रफुल्ल—कहाँ जा रही हैं वे ?

जीवानन्द—सो भी नहीं जानता।

प्रफुल्ल—जानकर भी कोई लाभ नहीं, भाईसाहब। बाप रे! औरत क्या है, जैसे मर्दका बाप हो। मन्दिरमें खड़ा हुआ उस दिन बहुत देर तक देखता रहा था, मालूम हुआ, जैसे पैरसे सिर तक पत्थरसे बनी हुई हो। घनकी चोटसे उसे चकनाचूर किया जा सकता है, पर आगमें गलाकर अपनी इच्छाके माफिक साँचेमें ढाल लें, यह नहीं हो सकता। हो सके तो, इस अभिप्रायको त्याग दीजिएगा।

जीवानन्द—(व्यंगके स्वरमें) तो प्रफुल्ल, अबकी तुम जाओगे ही ?

प्रफुल्ल—बुजुर्गोंकी असीसमें जोर होगा तो मनकी कामना सिद्ध होगी क्यों नहीं ?

जीवानन्द—सो हो सकती है। अच्छा, षोड़शी सचमुच ही चली जायगी, तुम्हें मालूम होता है ?

प्रफुल्ल—होता है। क्योंकि संसारमें सभी प्रफुल्ल नहीं हैं। हाँ, खूब याद आई, भइया। आपको एक खबर सुनाना भूल ही गया था। कल रातको नदी-किनारे घूम रहा था, सहसा देखा फकीर साहब जा रहे हैं। आपको जिन्होंने एक दिन अपने वटवृक्षपरसे घुग्घूका शिकार नहीं करने दिया था,—बन्दूक छीन ली थी—वही। मैंने मिलिटरी ढंगसे सलाम करके कुशल पूछा,—तबीयत

थी कि मुख-रोचक दो-चार खुशामद-उसामदकी बातें करके अगर कोई अच्छी-सी दवा-अवा निकलवा सका, तो आपके जरिए पेटेन्ट कराकर बेचके कुछ रुपये कमाऊँगा। पर हजरत हैं बड़े चालाक, उस किनारेहीसे नहीं गये। बातों-ही बातोंमें मालूम हुआ कि अपनी भैरवी बेटीसे मिलने आये थे, अब वापस जा रहे हैं। भैरवी सब छोड़-छाड़कर चली जा रही है, यह उन्हींसे सुना।

जीवानन्द—शायद उन्हींके सदुपदेशसे ?

प्रफुल्ल—नहीं। बल्कि उपदेशके विरुद्ध ही जा रही हैं।

जीवानन्द—कहते क्या हो जी, फकीर तो सुना है उनके गुरु हैं। गुरुकी आज्ञा लंघन करके ?

प्रफुल्ल—इस मामलेमें तो यही बात है।

जीवानन्द—परन्तु इतने बड़े विरागका कारण ?

प्रफुल्ल—कारण आप हैं। मालूम नहीं, यह बात आपको सुनाना उचित होगा या नहीं, पर फकीरकी धारणा है कि आपसे वे मन-ही-मन बहुत डरती हैं। कहीं, लड़ाई-झगड़ेके बीचमें आपसे लिप्त न हो जायँ, इसकी उन्हें सबसे बड़ी फिकर है। नहीं तो डर उन्हें झूठे कलंकसे भी नहीं है, और न गाँवके लोगोंसे ही है।

[जीवानन्द आँखें फाड़-फाड़कर चुपचाप देखता रहता है।]

प्रफुल्ल—भइया, भगवानने आपको भी कम बुद्धि नहीं दी है, किन्तु सर्वस्व समर्पण करके कल उन्होंने ही बड़ी भारी भूल की या हाथ फैलाकर ले लेनेमें आपने ही मारात्मक गल्ती की, इसकी मीमांसा आज बाकी रह गई। यदि जीता रहा तो आशा है एक दिन देख पाऊँगा।

[जीवानन्द चुप बैठ रहता है। सहसा बेहरा शराबका गिलास लेकर भीतर चला आता है।]

जीवानन्द—ओःफ्—यहाँ भी। जा, ले जा,—जरूरत नहीं।

प्रफुल्ल—गुस्सा क्यों होते हैं भाई साहब ?—जैसी शिक्षा होगी, वैसा ही तो होगा। बल्कि, कब जरूरत होगी, सो बता दीजिए न।

[बेहरा चला जाता है।]

प्रफुल्ल—अकस्मात् अमृतसे अरुचि कैसे हो गई भइया ?

जीवानन्द—(हँसकर) अरुचि नहीं,—पर अब न पीऊँगा।

प्रफुल्ल—(हँसकर) इसे लेकर कितनी बार प्रण कर चुके भइया ?

जीवानन्द—(हँसकर) इसकी मीमांसा भी आजके लिए मुलतबी रहने दो, प्रफुल्ल,—अगर जिन्दा रहे, तो आशा है एक दिन देख लोगे।

[बेहरा फिर प्रवेश करता है।]

बेहरा—यह पिस्तौल भूलसे टेबिलपर छोड़ आये थे।

जीवानन्द—भूलसे ही छोड़ आया था, पर उसकी भी अब जरूरत नहीं, तू ले जा।

प्रफुल्ल—पर रात बहुत हो गई, ग्यारह बज रहे हैं, घर चलिए।

जीवानन्द—नहीं, घर नहीं प्रफुल्ल, अब अकेले अँधेरेमें जरा घूमने निकलूँगा।

प्रफुल्ल—अकेले ? बिना अस्त्रके ? नहीं नहीं, सो नहीं होगा भाईसाहब। अँधेरी रात है, इधर-उधर आपके दुश्मन बहुत हैं। कमसे कम अपने रोजके सहचरको साथ रखिए।

[इतना कहकर नौकरके हाथसे पिस्तौल लेकर देने लगता है।]

जीवानन्द—(पीछेको हटकर) इस जीवनमें इसे अब मैं नहीं छूनेका प्रफुल्ल। आजसे मैं ऐसे ही अकेला निकला करूँगा, जैसे कहीं कोई दुश्मन है ही नहीं मेरा। मुझसे भी किसीको कोई डर न हो; उसके बाद जो हो, वो होता रहे। मैं किसीसे शिकायत न करूँगा।

प्रफुल्ल—यह अचानक हो क्या गया आपको ? न हो तो पियादोंमेंसे ही किसीको बुला दूँ ?

जीवानन्द—नहीं, पियादे-सिपाही भी अब नहीं। तुम लोग घर जाओ।

प्रफुल्ल—आपकी आज्ञा न लाघूँगा। हम लोग चले, पर आप भी ज्याद देर न कीजिएगा—मेरा अनुरोध है।

[प्रफुल्ल और बेहराका प्रस्थान।]

[जीवानन्द धीरे-धीरे नाट्य-मन्दिरके दूसरी ओर पहुँच जाता है। वहाँ एक आदमी खम्भेके सहारे बैठा हुआ मृदु कण्ठसे कुछ गा रहा है और उसके पास ही चार-पाँच आदमी चादर ओढ़े सो रहे हैं। जीवानन्द झुककर अँधेरेमें उसे देखनेकी कोशिश करता है।]

गीत

पूजा कर तेरी यदि हम सब,
आँसूकी बहायें धारा,
शुभंकरी क्यों नाम धर रहीं,
तुम दुखहारी मा तारा।
किन पापोंसे माता काली,
दी कलंककी स्याही पोत,
अब केवल आशा तेरी तू
अभयदायिनी जगती जोत।

जीवानन्द—कौन हो तुम ?

पथिक—जी, मैं एक यात्री हूँ बाबू।

जीवानन्द—मैं बाबू हूँ, पहचाना कैसे ?

पथिक—जी, इतना भी नहीं पहचान सकता ? शरीफ आदमीके सिवा इतने उजले कपड़े और किसके होंगे बाबू ?

जीवानन्द—ओः—यह बात है ? कहाँसे आ रहे हो ? कहाँ जाओगे ? ये लोग शायद तुम्हारे साथी होंगे ?

पथिक—आ रहा हूँ मानभूम जिलेसे बाबू, जाऊँगा पुरीधाम। इनमेंसे किसीका घर है मेदिनीपुर, किसीका और कहीं,—कहाँ जायँगे, सो भी नहीं जानता।

जीवानन्द—अच्छा, कितने आदमी यहाँ रोज आया करते हैं ? जो लोग यहाँ रह जाते हैं, उन्हें दोनों वक्त खानेको मिलता है, न ?

पथिक—(लज्जित होकर) सिर्फ खानेको ही नहीं बाबू। मेरे पाँवमें कटकर घाव हो गया है, इससे भैरवी माने खुद हुकम दिया था—जबतक अच्छा न हो जाय, तब तक यहीं रहो।

जीवानन्द—तुमसे नहीं कह रहा, भाई, अच्छा तो है, तुम रहो न। जगहकी तो कोई कमी नहीं है।

पथिक—पर सुना है, भैरवी मा तो अब रही नहीं।

जीवानन्द—इतनेमें सुन भी लिया ? सो वे न रहें, पर उनका हुकम तो है ? तुम्हें जानेको कहे, किसकी मजाल है ! घर कहाँ है भाई तुम्हारा ?

पथिक—घर मेरा था बाबू, मानभूमके बंसीतट गाँवमे। गाँवमें न अनाज है, न पानी; डाक्टर-वैद्य भी नहीं हैं,—जमींदार साहब रहते हैं कलकत्ता, कभी कोई उनसे अपना दुखड़ा रो नहीं सकता। वहाँ तो सिर्फ गुमाश्ता रहते हैं रुपये वसूल करनेके लिए।

[जीवानन्द चुपचाप सिर हिलाकर उसका अनुमोदन करता है।]

पथिक—लगातार दो साल तक बरसा नहीं हुई, खेतकी फसल जल-भुनकर मिट्टीमे मिल गई, इतना तक तो सह लिया बाबू,—लेकिन—

(कहते कहते उसे रोना आ जाता है जिससे गला रुँध जाता है।)

जीवानन्द—इसीसे शायद सब छोड़-छाड़कर एकदम तीर्थयात्राके लिए निकल पड़े?

पथिक—(सिर हिलाकर) इसी फागुनमे स्त्री मर गई, एकके बाद एक दोनो लड़के हैजामे आँखोंके सामने मर गये बाबूजी, एक बूँद दवा भी किसीको न दे सका।

[कहते कहते उच्छ्वसित शोकसे रो देता है और जीवानन्द कुर्तेकी आस्तीनसे अपने आँसू पोंछने लगते हैं।]

पथिक—मनमे कहा, अब क्यो? टूटी-फूटी झोपड़ी विधवा भतीजीको देकर निकल पड़ा,—बाबू, मुझसे बढ़कर दुखिया संसारमे और कोई नहीं।

जीवानन्द—अरे भाई मेरे, संसार बहुत बडी जगह है। इसमे कौन किस जगह कैसी हालतमे है, कुछ कहा नहीं जा सकता।

पथिक—किन्तु मेरे जैसा—

जीवानन्द—दुखिया? मगर दुखियाओंकी तो कोई अलग जात नहीं है भइया, और दुःखका भी कोई बँधा हुआ रास्ता नहीं। ऐसा होता तो सभी उससे बचकर चल सकते। भड़भड़ाकर जब सिरपर आकर पड़ता है, तभी सिर्फ आदमीको उसका पता लगता है। मेरी सब बातें तुम समझोगे नहीं भाई, मगर संसारमे सिर्फ तुम्हीं अकेले नहीं हो। कमसे कम एक साथी तो तुम्हारे बहुत ही पास खड़ा है, उसे तुम पहचान भी नहीं सके हो। पर तुम जो माका नाम ले रहे थे—

[सहसा सागर और हरिहर तेजीके साथ प्रवेश करके मन्दिरके सामने आकर खड़े हो जाते हैं। जीवानन्द कान लगाकर उनकी बातें सुनने लगता है।]

हरिहर—हमारी माका जिसने सर्वनाश किया है, उसका सर्वनाश किये बगैर हम नहीं रह सकते।

सागर—माताकी चौखट छूकर कसम खाता हूँ चचा, फाँसीपर जाना पड़े, सो भी मंजूर है।

हरिहर—हः—हम लोगोंके लिए जेल, हम लोगोंके लिए फाँसी! माको पहले जाने तो दो,—

हरिहर और सागर—जय मा चण्डी! [दोनोंका प्रस्थान।

जीवानन्द—वास्तवमें देवी-देवताके समान सहृदय श्रोता और कोई नहीं। भले ही यह झूठा दम्भ हो, फिर भी इसकी कीमत है—फिर भी कमज़ोरके व्यर्थ पौरुषको कुछ गौरवका स्वाद मिलता है!

पथिक—क्या कहा बाबू?

जीवानन्द—कुछ नहीं भाई, तुम माताका नाम ले रहे थे, मैंने आकर विघ्न डाल दिया। फिर शुरू करो तुम, मैं चला। कल इसी समय शायद भेंट होगी।

पथिक—अब तो भेंट नहीं होगी बाबू, मैं पाँच दिनसे हूँ, कल ही सबेरे चला जाना होगा।

जीवानन्द—चला जाना होगा? पर अभी तो तुमने कहा कि पाँव तुम्हारा अभी तक अच्छा नहीं हुआ, तुमसे चला नहीं जाता?

पथिक—माताका मन्दिर अब हो गया राजा साहबका। हुजूरका हुकम है कि तीन दिनसे ज्यादा अब कोई न रह सकेगा।

जीवानन्द—(हँसकर) भैरवी अभी गई भी नहीं और इसी बीचमें हुजूरका हुक्म जारी हो गया? मा चण्डीकी तकदीर अच्छी है! अच्छा, आज अतिथियोंकी सेवा कैसी हुई? क्या खाया भइया?

पथिक—जिन्हें तीन दिनसे ज्यादा नहीं हुए, उन सबको प्रसाद मिला।

जीवानन्द—और तुम्हें? तुम्हें तो तीन दिनसे ज्यादा हो गये हैं?

पथिक—महाराज क्या कर सकते हैं, राजा साहबका हुकम नहीं है न!

जीवानन्द—होगा। (एक लम्बी साँस लेकर) कल मैं फिर आऊँगा, मगर भाई, तुम चुपकेसे नहीं चले जा सकते।

पथिक—महाराज अगर कुछ कहें?

जीवानन्द—कहने न दो। इतना दुःख सह सके तो क्या ब्राह्मणकी एक बात नहीं सह सकोगे? रात बहुत हो गई, अब मैं जाता हूँ, पर याद रखना।

(इतनेमें षोड़शी दीपक हाथमें लिये धीरे धीरे प्रवेश करके मन्दिरके द्वारकी तरफ जाती है, जीवानन्द पीछेसे आवाज़ देता है।)

जीवानन्द—अलका?

षोड़शी—(चौंककर) आप? इतनी रातमें आप यहाँ क्यों?

जीवानन्द—क्या मालूम, ऐसे ही चला आया था। तुम जानेसे पहले देवीके दर्शन करने आई हो, न? चलो, मैं तुम्हारे साथ चलूँ।

षोड़शी—मेरे साथ जानेमें खतरा है, सो तो आप जानते हैं?

जीवानन्द—खतरा? जानता हूँ। मगर मेरी तरफसे कतई नहीं। आज मैं अकेला हूँ और बिलकुल निरस्त्र। इस जीवनमें और चाहे कुछ भी क्यों न मानूँ, पर मेरा कोई शत्रु है, इस बातको अब मैं किसी भी दिन नहीं माननेका।

षोड़शी—पर क्या होगा मेरे साथ जाकर?

जीवानन्द—कुछ नहीं। सिर्फ जबतक हो, साथ रहूँगा। उसके बाद जब समय होगा, तुम्हें गाड़ीपर बिठाकर घर चला जाऊँगा। जाते समय अब आज तुम मेरा अविश्वास न करो। मेरी आयुकी कीमत तो तुम जानती हो, शायद अब फिर कभी भेट ही न हो। मुझपर तुम कितनी तरहसे दया कर गई हो, इस बातको मैं अन्तिम दिन तक याद किया करूँगा।

षोड़शी—अच्छा, आइए मेरे साथ।

[बन्द दरवाजेके सामने जाकर षोड़शी देवीको नमस्कार करती है और जीवानन्द कहता है—]

जीवानन्द—तुम्हारी मुझे बहुत जरूरत है, अलका। दो दिन भी क्या अब तुम्हारा रहना नहीं हो सकता?

षोड़शी—नहीं।

जीवानन्द—एक दिन भी?

षोड़शी—नहीं।

जीवानन्द—तो मेरे सारे अपराध यहीं खड़ी रहकर माफ कर दो!

षोड़शी—पर इसकी आपको जरूरत क्या है?

जीवानन्द—आज मुझमें इसका जवाब देनेकी शक्ति नहीं है। अभी तो सिर्फ यही बात मेरे पूरे मनको घेरे हुए है कि किस तरह तुम्हें सिर्फ एक दिनके लिए भी पकड़के रखा जा सकता है। उफ्, जिसका अपना मन दूसरेके हाथ चला जाता है, संसारमें उससे बढ़कर असहाय-निरुपाय शायद और कोई भी नहीं।

[षोड़शी जीवानन्दके पास आकर स्तब्ध होकर चुपचाप खड़ी रहती है।]

जीवानन्द—(खड़ा होकर) मुझे सबसे बड़ा दुःख यह है अलका कि सब लोग जानेंगे कि मैंने सजा दी है, तुमने सहा है, और चुपचाप चली गई हो। इतना बड़ा झूठा कलंक मुझसे सहा कैसे जायगा? सो भी सह सकता अगर एक दिन,—सिर्फ एक ही दिन, तुम्हें अपने पास रख सकूँ।

षोड़शी—(पीछे हटकर) चौधरी साहब, किस लिए इतना अनुनय-विनय कर रहे हैं? आपके सिपाही-पियादोंके देहके जोरका तो आज भी अभाव नहीं। आप तो जानते हैं,—मैं किसीसे शिकायत-नालिश नहीं करनेकी।

जीवानन्द—(रास्ता छोड़कर) तो तुम जाओ। असम्भवके लोभसे अब तुम्हें मैं नहीं सताऊँगा। सिपाही-पियादे सभी हैं अलका,—उनके जोरमें भी कमी नहीं हुई है। परन्तु जो स्वयं पकड़ाई नहीं दी, जोर-जबरदस्ती पकड़ रखकर उसका बोझ ढोनेकी ताकत अब मेरी देहमें नहीं है।

षोड़शी—(घुटने टेककर जमीनसे सिर लगाकर प्रणाम करके पाँवकी धूल सिरसे लगाते हुए) आपसे मेरा सिर्फ यही अनुरोध है,—

जीवानन्द—क्या अनुरोध है अलका?—

[बाहर बैलगाड़ी खड़ी होनेकी आवाज सुनाई देती है।]

षोड़शी—कृपा करके जरा सावधान रहिएगा।

जीवानन्द—सावधान रहूँगा! क्या मालूम, सो शायद अब मुझसे न हो सकेगा। कुछ देर पहले इसी मन्दिरमें न जाने कौन दो आदमी देवीकी चौखट छूकर प्राणतक देनेकी प्रतिज्ञा कर गये हैं,—उनकी माका जिसने सर्वनाश किया है, उसका सर्वनाश बगैर किये वे न छोड़ेंगे। ओटमें छिपकर यह सब मैंने अपने ही कानोंसे सुना है,—दो दिन पहले होता तो समझता, मैं ही शायद उनका लक्ष्य हूँ,—दुश्चिन्ताकी सीमा न रहती; मगर आज कुछ मालूम ही नहीं हुआ,—क्यों अलका? चौंक क्यों पड़ीं?

षोड़शी—(पीले फक चहरेसे) नहीं, कुछ नहीं। अब तो आपको चण्डीगढ़ छोड़कर घर चला जाना उचित है। अब तो यहाँ आपको कोई काम नहीं।

जीवानन्द—(अन्यमनस्क होकर) काम नहीं ?

षोड़शी—कहाँ, मुझे तो कुछ दिखाई नहीं देता। यह गाँव आपका है, इसे निष्पाप करनेके लिए ही आप आये थे। मेरे जैसी असतीको निर्वासित करनेके बाद अब आपको यहाँ और क्या काम करना है, मैं तो नहीं जानती।

जीवानन्द—(आँखें खोलकर एकटक देखता हुआ) परन्तु, तुम तो असती नहीं हो।

[गाड़ीवानका प्रवेश]

गाड़ीवान—माँजी, अभी क्या ज़्यादा देर होगी ?

षोड़शी—नहीं भइया, अब ज़्यादा देर नहीं है।

[गाड़ीवानका प्रस्थान।]

षोड़शी—चण्डीगढ़से मगर आपको जाना ही होगा, सो मैं कह देती हूँ।

जीवानन्द—कहाँ जाऊँ बताओ ?

षोड़शी—क्यों, अपने घर। बीजगाँव।

जीवानन्द—अच्छी बात है, चला जाऊँगा।

षोड़शी—लेकिन कल ही जाना होगा।

जीवानन्द—(मुँह ऊपर करके) कल ही ? लेकिन काम जो पड़ा है। खेतोंमें पानीके निकासके लिए एक पुलिया बनवानी जरूरी है। इन लोगोंकी जमीनें सब वापस कर देनी होंगी, यह तो तुम्हारा ही हुक्म है। इसके सिवा मन्दिरका ठीकसे इन्तजाम होना चाहिए,—अतिथि-यात्री जो लोग आते हैं उनपर अत्याचार न हो,—यह सब बिना ठीक किये ही क्या तुम जानेको कहती हो ?

षोड़शी—(संकटमें पड़कर) यह सब साधु-संकल्प क्या कल सबेरे तक बने रहेंगे ? (जीवानन्द चुप रहता है) मगर जरूरतसे एक दिन भी ज्यादा न रहेंगे, मुझे वचन दीजिए और इन दिनोंमें भी पहलेकी तरह सावधान रहेंगे, कहिए ?

जीवानन्द—(इस बातपर कुछ ध्यान न देकर) अपने किये कर्मोंका फल अगर मैं भोगूँ तो उसकी शिकायत किसीसे न करूँगा,—मगर जाते समय तुमसे मेरी सिर्फ एक ही माँग है—(जेबसे एक पत्र निकालकर षोड़शीके हाथमें देता है) यह चिट्ठी फकीर साहबको दे देना।

षोड़शी—दे दूँगी। पर इस चिट्ठीको क्या मैं पढ़ नहीं सकती ?

जीवानन्द—पढ़ सकती हो, पर जरूरत नहीं। इसका जवाब देनेकी जरूरत नहीं होगी। मुझे दुःखसे बचानेके लिए मुझसे बहुत ज्यादा दुःख तुमने खुद उठाया है। नहीं तो इस तरह शायद मुझे,—पर जाने दो उन बातोंको। मेरा अन्तिम अनुरोध इसीमें लिखा है, इसे अगर रख सको तो मेरे लिए उससे ज्यादा और कोई आनन्द नहीं।

षोड़शी—तो पढ़ लूँ ?

[षोड़शी चुपचाप चिट्ठी पढ़ती है;—उसके चेहरेके भावोंमें बड़ा भारी परिवर्तन हो जाता है। जीवानन्दसे छिपाकर जल्दीसे वह अपने आँसू पोंछ डालती है।]

षोड़शी—मैं कुष्ठाश्रमकी दासी होकर जा रही हूँ, यह खबर तुम्हें कैसे मालूम हुई ?

जीवानन्द—कुष्ठाश्रमकी बात तो बहुतोंको मालूम है। और तुम्हारी बात ? आज ही देवीके द्वारके सामने खड़े होकर जो लोग प्रतिज्ञा कर गये हैं, अपने कानोंसे सुनकर भी मैं जिन्हें पहचान नहीं सका,—तुमने उन्हें कैसे पहचान लिया ?

षोड़शी—तुम्हारा क्या दुनियादारीमें अब मन नहीं रहा ? सब-कुछ बाँट-बूँटकर नष्ट करके क्या तुम संन्यासी होकर निकल जाना चाहते हो ?

जीवानन्द—(सहसा उत्तेजित होकर) मैं संन्यासी हो जाऊँगा ? झूठी बात है। मैं जीना चाहता हूँ। आदमियोंके बीच आदमियोंकी तरह जीना चाहता हूँ। घर चाहता हूँ, गृहस्थी चाहता हूँ, स्त्री चाहता हूँ, सन्तान चाहता हूँ,—और मौत जिस दिन रोके भी न रुकेगी उस दिन उन सबकी आँखोंके सामनेसे ही उठ जाना चाहता हूँ। पर, यह प्रार्थना करूँ किसके आगे ?

[गाड़ीवानका प्रवेश]

गाड़ीवान—माजी, शैवालदिग्घी सात-आठ कोसका रास्ता है। अभीसे न निकला गया तो पहुँचनेमें अबेर हो जायगी।

षोड़शी—चलो बेटा, आती हूँ ।

[गाड़ीवानका प्रस्थान । षोड़शी जीवानन्दको फिरसे नमस्कार करती है ।]

षोड़शी—मैं जाती हूँ ।

जीवानन्द—अभी ? इतनी रातमें ?

षोड़शी—किसान सब जानते हैं कि मैं तड़के ही रवाना होऊँगी,—उन लोगोंके आ पहुँचनेके पहले ही मुझे रवाना हो जाना चाहिए ।

[प्रस्थान ।

जीवानन्द—(अकेला अँधेरेमें खड़ा हुआ) अलका ! अलका ! एक दिन तुम्हारी माने मेरे ही हाथ तुम्हें सौंपा था तो भी मैं तुम्हें न पा सका; पर उस दिन मुझे अगर कोई तुम्हारे हाथ सौंप देता तो आज शायद तुम ऐसे अँधेरेमें मुझे इस तरह छोड़कर नहीं जा सकतीं ।

[बाहरसे बैलगाड़ीके चलनेकी आवाज सुनाई देने लगती है ।]

चतुर्थ अंक

प्रथम दृश्य

शान्ति-कुंज

[जमींदारका 'शान्ति-कुंज' तीन-चार दिन हुए जलके खाक हो गया है। भयंकर अग्नि-काण्डके अनेक चिह्न अब भी मौजूद हैं। सब कुछ जल गया है, सिर्फ नौकरोंके रहनेकी दो-एक कोठरियाँ बच गई हैं। उन्हींमें जीवानन्द रहते हैं। सामनेकी खुली हुई खिड़कीसे बाम्ई नदीका पानी बहता दिखाई दे रहा है। प्रातःकालके समय उसी तरह आँखें फैलाये जीवानन्द चुपचाप बैठे हैं। चेहरेपर किसी तरहकी चंचलता या उत्तेजनाका कोई चिह्न नहीं दिखाई देता,—सिर्फ रात-भर उत्कट बीमारीसे जो कष्ट पाया है, उसीकी एक म्लान छाया सारे शरीरपर व्याप्त हो रही है।]

[प्रफुल्लका प्रवेश]

प्रफुल्ल—अब कैसी तबीयत है भइया ?

जीवानन्द—अच्छी है।

प्रफुल्ल—बहुत दिनोंकी आदत ठहरी, दवाकी तौरपर भी एक-आध आउन्स अगर—

जीवानन्द—(हँसकर) दवा तो है ही। नहीं प्रफुल्ल, मैं शराब नहीं पीऊँगा।

प्रफुल्ल—कलकी रात हम लोगोंकी कैसी घबराहटसे बीती है ! मारे दर्दके हाथ-पैर तक ठंडे हुए जा रहे थे।

जीवानन्द—इसी लिए यह गरम करनेका प्रस्ताव है ?

प्रफुल्ल—बल्लभ डाक्टरको डर है, अचानक कहीं हार्ट-फेल न हो जाय।

जीवानन्द—हार्ट तो अचानक ही फेल होता है प्रफुल्ल।

प्रफुल्ल—मगर उसके लिए तो कोई—

जीवानन्द—(अपने हार्टको हाथसे दिखाकर) भइया, यह बेचारा बहुत उपद्रवोंके बाद भी समान रूपसे चल रहा है, किसी दिन फेल नहीं हुआ। अकस्मात् किसी दिन यदि यह कोई अकाज कर ही बैठे तो इसे माफ कर देना चाहिए।

प्रफुल्ल—कैसे जिद्दी आदमी हैं आप, भइया। सोचता हूँ, इतनी बड़ी जिद अबतक कहाँ छिपी हुई थी?

जीवानन्द—हाँ, खूब याद आई, तुम्हारा दाल-रोटी जुटानेके लिए निकल-पड़नेका जो शुभ प्रस्ताव था, वह कहाँतक अग्रसर हुआ?

प्रफुल्ल—कुसूर हो गया, भाईसाहब। आप अच्छे हो जाइए, दाल-रोटीकी फिकर उसके बाद ही करूँगा।

जीवानन्द—मेरे अच्छे होनेके बाद? खैर, मैं निश्चिन्त होता हूँ।

[तारादास और पुजारीका प्रवेश]

तारादास—मन्दिरके कुछ थाल-लोटे वगैरह नहीं मिल रहे हैं।

जीवानन्द—जो नहीं मिलते, उन्हें फिरसे खरीदना होगा।

[व्यस्त होकर एककौड़ीका प्रवेश]

एककौड़ी—(जोर-जोरसे) यह काम सरदारका है। आज खबर लगी है, उसे और उसके दो साथियोंको उस दिन बहुत रात तक इधर घूमते देखा है लोगोंने। थानेको खबर भेज दी है, पुलिस आ ही रही होगी। तमाम भूमिज वंशको अगर मैंने इस मामलेमें अण्डमान न भिजवा दिया तो मेरा नाम एक-कौड़ी नन्दी नहीं,—फिजूल ही मैंने इतने दिन हुजूरकी सरकारकी गुलामी की!

जीवानन्द—(जरा हँसकर) तब तो तुमको भी उनके साथ जाना पड़ेगा, एककौड़ी। जमींदारकी गुमाश्तागीरीके काममें तुमने जिन लोगोंके घर जलवाये हैं, सो तो मुझे मालूम है। इन लोगोंको आग लगाते हुए किसीने देखा नहीं;—सिर्फ सन्देहपर अगर उन्हें सजा भुगतनी पड़े तो जाने हुए अपराधपर तुम्हें भी तो उसका हिस्सा लेना पड़ेगा?

एककौड़ी—(पहले हतबुद्धि-सा होकर, फिर मूर्खो हँसीके साथ) हुजूर मा-बाप हैं। हम लोग सात पीढ़ीसे हुजूरके गुलाम हैं। हुजूरके हुकमसे सिर्फ जेल ही क्यों, फाँसी जानेमें भी हम लोगोंको अहंकार है।

जीवानन्द—जो जल चुका है वह अब वापस नहीं आ सकता; परन्तु, उसपर अगर पुलिसके साथ जुटकर नया बखेड़ा खड़ा करके कुछ ऊपरी रोजगारकी कोशिश करोगे, तो हुजूरकी नुकसानीकी मात्रा बहुत ज्यादा बढ़ जायगी, एककौड़ी।

पुजारी—मिस्त्री आया है हुजूरके पास फरियाद करने।

जीवानन्द—किस बातकी फरियाद ?

पुजारी—मन्दिरकी मरम्मतके काममें इत्तिफाकसे उसका विशेष नुकसान हो गया था। मैंने कहा था, काम खतम होनेपर उसका नुकसान पूरा कर दिया जायगा। मैं तब मौजूद था हुजूर।

जीवानन्द—तो दे क्यों दिया नहीं जाता ?

पुजारी—(तारादासकी तरफ इशारा करके) ये कहते हैं, जिसने कहा था उससे जाकर वसूल कर।

[जीवानन्द क्रुद्ध दृष्टिसे तारादासकी तरफ देखता है।]

तारादास—बहुत-से रुपये—

जीवानन्द—बहुत-से रुपये ही देना महाराज।

तारादास—परन्तु, खर्चा ठीक उचित है या नहीं—

जीवानन्द—देखो तारादास, यह सब शैतानी बुद्धि छोड़ दो तुम। षोड़शीके विषयमें उचित-अनुचितके विचारका भार तुमपर नहीं है। जो कह गई हैं, वही करो जाकर। (पुजारीसे) मिस्त्री खड़ा है ?

पुजारी—हाँ, हुजूर !

जीवानन्द—चलो, मैं खुद चलकर सब चुकाये देता हूँ।

[जीवानन्द, प्रफुल्ल, तारादास और पुजारीका प्रस्थान। सिर्फ एक कौड़ी रह जाता है। शिरोमणि और जनार्दनका प्रवेश।]

जनार्दन—बाबू गये कहाँ ?

एककौड़ी—(तीखेपनसे) कौन जाने !

जनार्दन—कौन जाने क्या जी ! थानेमें खबर देनेकी बात उनसे कही थी ?

एककौड़ी—कह सके तो आप ही कहिए न।

जनार्दन—बात क्या है एककौड़ी ?

एककौड़ी—क्या जानें क्या बात है। न तो कुछ मिजाजहीका ठीक है और न किसी बातका ठीक-ठिकाना ही मिलता है। तारादास महाराजको मारनेके लिए झपट पड़े, मुझे जेल भेज रहे थे,—

शिरोमणि—अत्यधिक मद्यपानका फल है। हुजूर क्या अभी लौट आयेंगे मालूम होता है ?

एककौड़ी—समझे राय साहब, झूठे सन्देहपर सागर सरदारका नाम पुलिसको जताना नहीं हो सकेगा !

जनार्दन—झूठा सन्देह क्या जी ? अरे, यह तो बिलकुल प्रत्यक्ष ही समझो ।

शिरोमणि—एक बार प्रत्यक्ष ही कहना चाहिए ।

एककौड़ी—अच्छी बात है, कहके देखिए न एक बार ?

जनार्दन—कहूँगा नहीं तो क्या जी । नहीं तो क्या सारे परिवारसहित जलके खाक हो जायँगे ? षोडशीको अलग करनेके काममें मैं भी तो एक उद्योगी था ।

शिरोमणि—मेरी ही कौन-सी बात मानी है उन लोगोंने !

जनार्दन—जो लोग इतने बड़े जमींदारके मकानमें आग लगा सकते हैं, वे कौन-सा काम नहीं कर सकते ?

एककौड़ी—मैं भी यही सोचता हूँ ।

जनार्दन—सोचना पीछे । अभी जल्दीसे इसका कोई इन्तजाम करो । यहाँ अगर उन लोगोंको प्रश्रय मिल गया तो हम लोगोंको घरमें बन्द करके मान-कच्चूकी तरह भूनके छोड़ेंगे ।

शिरोमणि—ये नालायक गुरुकी दुहाई भी न मानेंगे । डकैत ठहरे न । हो सकता है कि ब्रह्म-हत्या ही कर बैठें । (सिहर उठते हैं)

जनार्दन—और सिर्फ मकानकी ही बात थोड़े है । मेरे कितने धानके गोले हैं, कितने पुआलके ढेर हैं, सब शुदा अगर—

शिरोमणि—देखो भाई साहब, मैं तो सोचता हूँ कि कुछ दिन शिष्योंके यहाँ घूम-फिर आऊँ ।

जनार्दन—मगर मेरे तो शिष्य नहीं हैं । और हों भी तो धानके गोले, पुआलके ढेर लेकर तो शिष्योंके यहाँ जाया नहीं जा सकता ?

शिरोमणि—नहीं । जानेपर भी उन सबको वापस ले आना मुश्किल है । आजकलके शिष्य-सेवकोंकी मति-गति भी और तरहकी हो गई है ।

एककौड़ी—चारों तरफ कड़ा पहरा रखनेका इन्तजाम कीजिए ।

जनार्दन—सो तो रख छोड़ा है, पर पहरा क्या तुम लोगोंके यहाँ भी कुछ कम था एककौड़ी ?

एककौड़ी—और एक बात सुनी है ? भूमिज किसान सब जाकर कल अदालतमें नालिश कर आये हैं । सुना है, उनका रोना-धोना सुनकर हाकिम खुद आयेंगे सर-जमीन जाँच करने ।

जनार्दन—कहते क्या हो जी! चण्डीगढ़में रहकर जमींदार और मेरे खिलाफ नालिश ?

शिरोमणि—शिष्योंके आह्वानकी उपेक्षा करना उचित नहीं हमारे लिए, जनार्दन !

एककौड़ी—देखिए हिमाकत इनकी! जिन्दगीमें ज्यादा दिन जिन्हें भर-पेट खानेको नहीं मिलता, जाड़ोंकी रातें जो लोग बैठे-बैठे बिताते हैं, मरीके दिनोंमें जो कुत्ते-बिल्लीकी तरह मरा करते हैं—

जनार्दन—और फिर फसलके वक्त मुट्ठी-भर बीजके लिए जो हमारे ही दरवाजेपर हत्या देते हैं—

एककौड़ी—उन नमकहराम नालायकोंके पास अदालतमें जाकर नालिश करनेके लिए रुपये कहाँसे आये ? और ऐसी दुर्बुद्धि दी किसने इन लोगोंको ?

जनार्दन—इस सीधी-सी बातको ये नालायक लोग नहीं समझते कि सिर्फ एक जिला-अदालत ही बस नहीं है, हाई-कोर्ट नामकी भी कोई चीज है, जहाँ जीवानन्द चौधरी और जनार्दन रायको लाँघकर सागर सरदार नहीं पहुँच सकता।

एककौड़ी—जरूर। वहाँ तो जिसका रुपया उसका मुकद्दमा। आपके पास रुपया है, सामर्थ्य है, जमाई बैरिस्टर है, कितने वकील-मुख्तार हैं,—नालिश अगर कर ही दें, तो आपको फिकर किस बातकी ?

जनार्दन—(चिन्तित भावसे) नहीं एककौड़ी, सिर्फ जमीन बेचनेहीकी तो बात नहीं, (इशारा करके) और भी जो सब काम किये गये हैं, फौजदारी कानूनकी किताबके पन्नोंमें उनकी फलश्रुति तो सहज साधारण नहीं मालूम देती !

एककौड़ी—सो जानता हूँ। मगर ये नीच किसान हाकिमके पास कहीं प्रश्रय पा गये तो !

जनार्दन—कहा नहीं जा सकता;—यही बात आज तुम अपने मालिकसे कहना। अब मैं चला।

एककौड़ी—अच्छी बात है। इस बीचमें मैं भी अपना एक काम पूरा कर रक्खूँ।

(शिरोमणि, एककौड़ी और जनार्दनका प्रस्थान।)

[बात करते हुए जीवानन्द और प्रफुल्लका प्रवेश।]

जीवानन्द—नहीं प्रफुल्ल, ऐसा नहीं हो सकता। खेतकी पानी-निकासीके लिए पुल बनानेको अगर नायबकी तहबीलमें रुपये नहीं हैं, तो यहाँके मकानकी मरम्मतका काम भी बन्द रहने दो।

प्रफुल्ल—अच्छी बात है, रहने दीजिए। पर आप देश लौट चलिए।

जीवानन्द—नहीं।

प्रफुल्ल—नहीं कैसे? इस घरमें आप रह कैसे सकेंगे?

जीवानन्द—जैसे अभी हूँ। यह बर्दाश्त हो जायगा। आदमीको बहुत-कुछ बर्दाश्त हो जाता है, प्रफुल्ल।

प्रफुल्ल—नहीं बर्दाश्त होता भइया, उसकी भी हद है। आपका स्वास्थ्य अचानक ही बहुत टूट गया है। वर्षा सामने है। इस टूटे-फूटे मन्दिरमें क्या यह आपकी टूटी हुई देह झोका बर्दाश्त कर सकती है? माफ कीजिए, आप घर चलिए।

जीवानन्द—(हँसकर) इस टूटे हुए शरीरके शरीरत्वकी आलोचना फिर किसी दिनकी जायगी भाई,—अभी तुम नायबको चिट्ठी लिख दो कि ये रुपये मुझे चाहिए ही। रिआया सालों-साल बराबर रुपये जुटाती आ रही है, और मर रही है। अब उसकी मौत रोकनेमें अगर जमींदार मरता है, तो भले ही मर जाय।

[तेजीसे जनार्दनका प्रवेश]

जनार्दन—हुजूरने क्या खुद,—स्वयं हुकम देकर मेरा—

जीवानन्द—कैसा हुकम रायसाहब?

जनार्दन—मेरे तालाबके किनारेवाली जगहका बेड़ा तुड़वाकर उसे मन्दिरकी जमीनके साथ मिला दिया है?

जीवानन्द—कौन-सी जगहके लिए कह रहे हैं? जहाँ बीसेक वर्ष पहले मन्दिरकी गोशाला थी?

जनार्दन—मैं तो नहीं जानता वहाँ कब—

जीवानन्द—बहुत दिन हो गये हैं न, इसीसे। शायद बहुत-से कामोंकी झंझटोंमें आप भूल गये हैं।

जनार्दन—(दुःसह क्रोधको दमन करते हुए) मगर यह सब करनेके पहले, हुजूर मेरे पास जरा खबर तो भिजवा सकते थे!

जीवानन्द—जानता था कि खबर तो पहुँच ही जायगी, दो घड़ी पहले या पीछे। कुछ खयाल न कीजिएगा।

जनार्दन—लेकिन पहले जता देनेसे मामले-मुकद्दमेकी शायद नौबत न आती।

जीवानन्द—अब भी नौबत आना उचित नहीं है, रायसाहब। भैरवियोंके हाथसे देवीकी बहुत-सी सम्पत्ति हाथ बेहाथ हो गई है। अब उस सबकी हाथ-बदली होना जरूरी है।

जनार्दन—(सूखी हँस हँसकर) इससे बढ़कर और अच्छी बात क्या होगी हुजूर। सुनते हैं, सारा गाँवका गाँव ही किसी दिन मा चण्डीका था। लेकिन अब—

जीवानन्द—जमींदारके पेटमें चला गया है? सो तो गया ही है। पर उसे वापस करनेमें भी कोई कोर-कसर न रक्खी जायगी, रायसाहब। मन्दिरकी दलील-दस्तावेज, नक्शा, मैप वगैरह जो कुछ है, अटर्नीके यहाँ कलकत्ते भेज दिया गया है। पर, मैं अकेला भला क्या कर सकता हूँ? इस काममें आप लोग भी मेरी सहायता कीजिए।

जनार्दन—करेंगे क्यों नहीं हुजूर! हम लोग हमेशासे हुजूरकी सरकारके सेवक नहीं तो और क्या हैं?

[जनार्दनका प्रस्थान। जीवानन्द सकौतुक हँसते हुए उसकी तरफ दृष्टि रखकर कुछ देर तक चुपचाप खड़े रहते हैं।]

प्रफुल्ल—भाई साहब, आखिरकार क्या आप यहाँ एक लङ्काकाण्ड शुरू कर देंगे?

जीवानन्द—अगर हो जाय तो वह भाग्यकी बात है प्रफुल्ल, इसके लिए तो देवताओंको एक दिन तपस्या करनी पड़ी थी!

प्रफुल्ल—देवता कर सकते हैं, लङ्काके बाहर बैठकर तपस्या करनेमें पुण्य भी है, और दुश्चिन्ता भी कम है। परन्तु लङ्काके भीतर वास करनेवालोंके लिए लङ्काकाण्ड सौभाग्यका विषय नहीं कहा जा सकता। आये हैं तबसे गाँव-भरके लोगोंसे झगड़ा करते फिरना आपके लिए न तो गौरवकी बात है, और न जरूरी। इस बीचमें नाना प्रकारके काम तो किये जा चुके, अब शान्त होकर चलिए, घर लौट चलें।

जीवानन्द—समय होते ही चला जाऊँगा ।

प्रफुल्ल—अच्छा, तभी जाइएगा। कुछ भी हो भइया, आपके जानेके समयका तो कुछ अन्दाज भी हो गया,—पर मेरे जानेका समय कब आयेगा, उसका कोई ठीक-ठिकाना ही नजर नहीं आता ।

[एककौड़ीका प्रवेश]

एककौड़ी—मिस्त्री खड़ा है । पुलका काम कहाँसे शुरू किया जायगा, जानना चाहता है ।

जीवानन्द—चलो न प्रफुल्ल, एक बार खेतोंकी तरफ जाकर उनका काम देख आयें।

प्रफुल्ल—चलिए ।

[जीवानन्द प्रफुल्लको साथ लेकर बाहर चले जाते हैं। दूसरी तरफसे शिरोमणि और जनार्दन राय प्रवेश करते हैं ।]

जनार्दन—बाबू कहाँ गये एककौड़ी ?

एककौड़ी—मिस्त्रीका काम देखने गये हैं । खेतोंके बीचमें पुलिया बनेगी ।

जनार्दन—पागलकी सनक है ।

शिरोमणि—मद्यपान-जनित बुद्धि-विकार है ।

एककौड़ी—इसी सनीचरको हाकिम सर-जमीनकी जाँचके लिए आयेंगे । पर इन नीचोंको बुद्धि और रुपये कौन दे रहा है, कुछ मालूम नहीं हो सका । बस इतना ही मालूम हो सका कि वे लोग अगर हुजूरको गवाह मानें तो हुजूर कोई बात छिपायेंगे नहीं । जाली दलील बनाने तककी बात नहीं छिपानेके ।

जनार्दन—(हँसकर) मेरी उमर कितनी हुई है, बतलाओ तो एककौड़ी ! चण्डीगढ़के जनार्दन रायको इस झाँसेबाजीसे चित नहीं किया जा सकता भइया, और कोई तरकीब भिड़ानी पड़ेगी । (क्षण-भर मौन रहनेके बाद) पर हाँ, इतना तो मानूँगा ही कि जरा तुम्हारे हाथमें जा पड़ा हूँ । ऐंठ-ऊँठकर कुछ ऊपरी रोजगार कर लेनेका मौका जरूर तुम्हारे हाथ लगा है । पर तो भी जितना रहे-सहे, उतना ही करो ।

एककौड़ी—सच कहता हूँ आपसे राय साहब—

जनार्दन—ओ हो, सो सच तो कहते ही हो ! एककौड़ी नन्दी झूठ कब कहते हैं ? सो बात नहीं है भाईसाहब, मेरी न-हो-तो सौ बीघे जमीन ही जायगी,

पर उनकी अपनी कितनी जायगी, सो क्या तुम्हारे मालिकने खतियाकर नहीं देखा ? नहीं देखा हो तो आँखोंमें उँगली देकर दिखा दो। उसके बाद भले ही मेरे ऊपर पेच कसना।

एककौड़ी—जगह-जमीनकी तो बात ही नहीं हो रही है, राय साहब। बात है दलील-दस्तावेजें बनाये जानेकी। पूछनेपर वे सभी बातें बता देंगे, कुछ छिपायेंगे नहीं।

जनार्दन—इसकी वजह ? जेल भेजनेकी मनसा ही तो ? मगर, अकेला जनार्दन नहीं जानेका, एककौड़ी। महारानी विक्टोरिया वे 'हुजूर' हैं, इसलिए रिआयत नहीं करनेकी,—यह बात उनसे कह देना।

एककौड़ी—(अभिमानके स्वरमें) कहना हो, तो आप ही खुद कहिएगा।

जनार्दन—कहूँगा नहीं तो क्या करूँगा ! अच्छी तरहसे ही कहूँगा। हाकिमके सामने कबूल-जवाब देकर साधु बनना मज़ाक़ नहीं है। (इशारा करके) हथकड़ियाँ पड़ जायँगीं।

एककौड़ी—सो आप जानें और वे जानें।

जनार्दन—और आप ? श्रीमान् एककौड़ी नन्दी ? मकान जब जला था, तभी मैं समझ गया था कि भीतर कुछ दालमें काला है। पर जनार्दनको इतनी नरम मिट्टी मत समझ लेना भाई साहब,—पछताओगे। निर्मलको रोक रक्खा है, वही तुम लोगोंको समझा देगा।

एककौड़ी—मेरे ऊपर झूठे ही आप गुस्सा होते हैं, राय साहब। मैंने तो जितना जानता हूँ, उतना आपको जता भर दिया है। विश्वास न हो, तो हुजूर यहीं सामनेके खेतोंमें ही मौजूद हैं, जरा घूमते हुए पूछते न जाइए।

जनार्दन—अवश्य जाऊँगा। शिरोमणिजी, चलिए न ?

शिरोमणि—चलिए न भाई साहब, डर किस बातका है ?

[दो कदम आगे बढ़कर सहसा लौट पड़ते हैं।]

शिरोमणि—(एककौड़ीसे) पूछता हूँ, ज्यादा शराब तो नहीं पिये हुए हैं ? नहीं तो फिर—

एककौड़ी—शराब वे नहीं पीते अब। (सहसा अपने कण्ठस्वरको संयत करके) पर अब जानेकी जरूरत नहीं, हुजूर खुद ही आ रहे हैं।

[जीवानन्द और प्रफुल्लका बहस करते हुए प्रवेश ।]

जनार्दन—(पास जाकर अस्वाभाविक व्याकुलताके साथ) हुजूर सब बातें जरा विचारकर देखें !

जीवानन्द—क्या रायसाहब ?

जनार्दन—जमीन-बिक्रीके बारेमें हाकिम खुद आ रहे हैं जाँच करने । हो सकता है कि जबरदस्त मुकद्दमा छिड़ जाय । पर आप शायद—

जीवानन्द—अच्छा ! लेकिन और चारा ही क्या है रायसाहब ? साहब जमीन छोड़ना नहीं चाहता,—उसने सस्तेमें खरीदी है । मुकद्दमा तो छिड़ेगा ही । लिहाजा मामला जीतनेके सिवा किसानोंके लिए दूसरा कोई रास्ता ही नहीं दिखाई देता ।

जनार्दन—(आकुल होकर) लेकिन हम लोगोंके लिए रास्ता ?

जीवानन्द—(क्षण-भर सोचकर) सो ठीक है, हम लोगोंका रास्ता भी खूब दुर्गम मालूम होता है ।

जनार्दन—(जान हथेलीपर रखके) एककौड़ीने तब तो सच ही कहा है ! लेकिन हुजूर, रास्ता सिर्फ दुर्गम ही नहीं,—जेल भी भुगतनी पड़ेगी । और हम अकेले ही नहीं हैं, आप भी बाद न पड़ेंगे ।

जीवानन्द—(जरा हँसकर) इसका भी क्या किया जा सकता है, रायसाहब ! शौकसे जब कि पौधा रोपा गया है, तब फल तो उसके खाने ही होंगे ।

जनार्दन—(चीत्कार करके) यह हम लोगोंका सत्यानाश करेंगे एककौड़ी !

[पागलकी तरह तूफानी चालसे बाहर चला जाता है । उसके पीछे एककौड़ी भी चुपके-से खिसक जाता है ।]

[नेपथ्यमें कोलाहल]

जीवानन्द—(क्षण-भर स्तब्ध रहकर) ये कौन जा रहे हैं प्रफुल्ल ?

प्रफुल्ल—शायद आपके मिट्टी खोदनेवाले धाँगड़-मजदूरोंका झुण्ड होगा ।

जीवानन्द—एक बार बुलाना जरा, उन्हें बुलाना तो । सुनें कि आज बाँधका काम कितना हुआ ?

प्रफुल्ल—(कुछ आगे बढ़कर) ओ जी, ओ सरदार, सुनो सुनो, जरा सुन जाओ ।

[स्त्री और पुरुष मजदूरोंका प्रवेश]

सरदार—काहे रे, काहेके बुलावत है ?

जीवानन्द—तुम लोग कहाँ जा रहे हो, बताओ तो ?

सरदार—भात खायेके रे।

जीवानन्द—देखना भइया, हमारा बाँधका काम जैसे बरसासे पहले ही पूरा हो जाय।

सब-कोई—(एक स्वरमें) सब हुई जावे रे, सब हुइ जावे। तुहू कुछ फिकर मत कर। चल सब। [कुलियोंका प्रस्थान

[निर्मलका प्रवेश]

जीवानन्द—(आदरके साथ) आइए, आइए निर्मल बाबू!

निर्मल—(नमस्कार करके) आपसे मुझे जरा काम है।

जीवानन्द—और किसी दिन नहीं हो सकता ?

निर्मल—नहीं,—विशेष जरूरी है।

जीवानन्द—सो ठीक है। अकाजका बोझ खींचनेके लिए जिन्हें अटका रहना पड़ता है, उनका समय नष्ट करनेसे काम नहीं चल सकता।

निर्मल—अकाज लोग किया करते हैं, तभी तो दुनियामें हम लोगोंकी जरूरत होती है चौधरी साहब।

जीवानन्द—पर काजके विषयमें सबकी धारणा एक-सी तो नहीं होती निर्मल बाबू। राय साहबका मैं अहित नहीं चाहता और आपका उद्देश्य सफल होनेसे मैं सचमुच ही खुश हूँगा; पर अपना कर्तव्य भी मैंने निश्चय कर लिया है। उसमें जरा भी फेरफार होना अब सम्भव नहीं।

निर्मल—यह क्या सच है कि आप सब कुछ कुबूल करेंगे ?

जीवानन्द—हाँ, सच ही तो है।

निर्मल—ऐसा भी तो हो सकता है कि आपके कुबूली-जवाबसे आपहीको सिर्फ सजा हो, और सब बच जायँ ?

जीवानन्द—हाँ-हाँ, इसकी काफी सम्भावना है। पर इसके लिए मुझे कोई शिकायत नहीं, निर्मल बाबू। अपने कृत-कर्मका फल मैं अकेला ही भोगूँ, इतना ही काफी है। राय साहब छुटकारा पाकर स्वस्थ शरीरसे दुनियादारी निभाते रहें, और हमारे एककौड़ी नन्दी महाशय भी अन्यत्र कहीं गुमाश्तागिरीके काममें उत्तरोत्तर उन्नति करते रहें, किसीके भी प्रति मेरा कोई आक्रोश नहीं है।

निर्मल—आत्म-रक्षाका तो सभीको अधिकार है, लिहाजा राय साहबको भी वह करनी होगा। आप खुद जमींदार हैं, आपके सामने मामला-मुकद्दमेका वर्णन करना ज्यादती होगी,—आखिर तक शायद जहरसे ही जहरका इलाज करना पड़े।

जीवानन्द—इलाज करनेवाले हकीम क्या जाल-करनेके जहरमें हत्या करनेकी व्यवस्था देंगे?

निर्मल—(गुस्सेको रोकते हुए) ऐसा भी तो हो सकता है कि किसीको कोई सजा भुगतनेकी जरूरत ही न पड़े, और, किसीका कुछ नुकसान भी न हो?

जीवानन्द—(उसी वक्त राजी होकर) यह तो बड़ी अच्छी बात है, आप यदि यह कर सकें तो अच्छा ही है। पर मैंने बहुत सोचकर देखा है, ऐसा नहीं होनेका। किसान अपनी जमीन नहीं छोड़नेके। क्योंकि यह सिर्फ अन्न-वस्त्रकी ही बात नहीं, उनके सात-पीढ़ियोंसे चले आये हुए आबाद खेत ठहरे, जिनके साथ उनकी नाड़ीका भी सम्बन्ध है। ये तो उन्हें देने ही होंगे। (जरा चुप रहकर) आप अच्छी तरह जानते हैं कि दूसरा पक्ष अत्यन्त प्रबल है; उसपर ज़ोर-जुल्म नहीं चल सकता। चल सकता है सिर्फ किसानोंपर;—पर हमेशासे उन्हींपर अत्याचार होता आया है और अब मैं उसे न होने दूँगा।

निर्मल—आपकी बड़ी-भारी जमींदारी है;—इन थोड़ेसे किसानोंके लिए क्या उसमें स्थान नहीं हो सकता? कहीं न कहीं—

जीवानन्द—नहीं नहीं, और कहीं नहीं,—इसी चण्डीगढ़में होना चाहिए। यहींपर मैंने जोर-जबरदस्तीसे उस दिन उनसे बहुत रुपये वसूल किये हैं, और उन्हें वे रुपये कर्ज दिये हैं जनार्दन रायने। इस कर्जको मुझे चुकवाना ही होगा। इसके सिवा, और एक जो कितना बड़ा शूल उनकी छातीमें चुभोया है, सो सिर्फ मैं ही जानता हूँ। पर जाने दो, अप्रिय आलोचना करनेकी अब मुझमें प्रवृत्ति नहीं रही निर्मल बाबू, मैंने अपना मन स्थिर कर लिया है।

[जीवानन्दका प्रस्थान।]

[उसी तरफ देखता हुआ निर्मल अभिभूतकी तरह स्थिर खड़ा रहता है। इतनेमें फकीर साहब आ पहुँचते हैं।]

फकीर—जमाई बाबू, सलाम। बाबू कहाँ हैं?

निर्मल—(नमस्कार करके) मालूम नहीं। फकीर साहब, षोड़शीकी हम

लोगोंको बहुत ही जरूरत है। वे जहाँ कहीं भी हों, एक बार उनसे मुझे भेंट करनी ही है। बताइए, कहाँ हैं ?

फकीर—आपको बतलानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, कारण, एक दिन जब कि सब कोई उनके सर्वनाशके लिए उतारू थे, तब आप ही सिर्फ उनकी रक्षाके लिए खड़े हुए थे।

निर्मल—और आज, ठीक उससे उलटा हो गया है, फकीर साहब। अब कोई भी अगर उन लोगोंको बचा सकता है तो अकेली वे ही। कहाँ हैं अभी वे ?

फकीर—शैबाल-दिग्घीके कुष्ठाश्रममें।

निर्मल—कुष्ठाश्रममें ? वहाँ क्या आरामसे हैं ?

फकीर—(मुसकराकर) ये लीजिए। औरतोंके विषयमें आरामसे रहनेकी खबर देवतागण भी नहीं जानते हैं, फिर मैं तो एक संन्यासी आदमी ठहरा। पर हाँ, बेटी मेरी शान्तिसे है, इतना ही अनुमान कर सकता हूँ।

निर्मल—(क्षण-भर मौन रहकर) यहाँ आप कहाँ आये थे ?

फकीर—जमींदार जीवानन्दकी इस चिट्ठीको पाकर उन्हींसे जरा मिलने आया था। यह चिट्ठी आपके लिए पढ़ना जरूरी है। लीजिए, पढ़िए।

[चिट्ठी देने लगते हैं]

निर्मल—(संकोचके साथ) जीवानन्दकी लिखी हुई है ? उसे मैं नहीं छुऊँगा। जरूरत हो, तो आप ही पढ़िए।

फकीर—जरूरत है ! नहीं तो कहता नहीं। चिट्ठी मुझहीको लिखी है।

[फकीर साहब धीरे-धीरे चिट्ठी पढ़ने लगते हैं और निर्मलके चेहरेका भाव संशय और आश्चर्यसे कठोर होता जाता है।]

फकीर—(चिट्ठी पढ़ते हैं)—

" फकीर साहब,

षोड़शीका असली नाम अलका है। वह मेरी स्त्री है। आपके कुष्ठाश्रमका मैं कल्याण चाहता हूँ, पर कृपाकर उससे कोई नीचा काम न कराइएगा। आश्रम जहाँ खोला गया है, वह जमीन मेरी नहीं, पर उससे लगा हुआ शैवाल-दिग्घी गाँव मेरा है। उसका मुनाफा लगभग पाँच-छह हजार रुपया सालका है। मैं आपको जानता हूँ। परन्तु आपकी अनुपस्थितिमें कहीं कोई अल-

काको बेबस जानकर उसकी मान-मर्यादामें खलल न डाले, इस डरसे आश्रमके लिए ही वह गाँव उसे देता हूँ। आप खुद किसी दिन कानून-जीवी रह चुके हैं,—इस लिए इस दानको पक्का करनेमें जो कुछ जरूरत हो, कर लीजिएगा, उसका खर्चा मैं ही दूँगा। कागज वगैरह सब तैयार करके भेजनेपर मैं दस्तखत करके रजिस्ट्री करा दूँगा।

—जीवानन्द चौधरी।"

फकीर—(निर्मलके चेहरेका भाव ताड़कर) संसारमें आश्चर्योंका कोई ठिकाना है !

निर्मल—(दीर्घ निश्वास लेकर गरदन हिलाता हुआ) हाँ। मगर यह सच है, इस बातका सबूत क्या है ?

फकीर—सच न होनेसे इस दानको लेनेके लिए षोड़शीको मैं किसी तरह नहीं ला सकता।

निर्मल—(व्यग्र कण्ठसे) लेकिन वे आई हैं क्या ? कहाँ हैं ?

फकीर—हैं मेरी कुटियामें, नदीके उस पार।

निर्मल—मुझे तो इसी समय उनके पास पहुँचना जरूरी है, फकीर साहब।

फकीर—चलिए। (हँसकर) लेकिन दिन छिपनेवाला है, उन्हें कहीं फिर आपका हाथ पकड़कर घर तक न पहुचाना पड़े !

[दोनोंका प्रस्थान

[सहसा नेपथ्यसे कुछ आदमियोंके सतर्क दबे हुए कोलाहलमेंसे प्रफुल्लकी आवाज साफ सुनाई देती है "सावधानीसे ! सावधानीसे ! देखना कहीं धक्का न लग जाय !" और दूसरे ही क्षण वे हाथों-हाथ उठा लाकर जीवानन्दको बिस्तरपर लिटा देते हैं। उनकी आंखें मिची हुई हैं। पासमें प्रफुल्ल है।]

प्रफुल्ल—अब तबीयत कैसी मालूम दे रही है भइया ?

जीवानन्द—अच्छी नहीं। मैं बेहोश होकर क्या पुलियासे गिर गया था प्रफुल्ल ?

प्रफुल्ल—नहीं भइया, हम लोगोंने पकड़ लिया था। कितनी ही बार मैं कह चुका हूँ कि ऐसी कमजोरीकी हालतमें ज्यादा परिश्रम आपसे न सहा जायगा, पर इसपर आपने ध्यान ही नहीं दिया। यह कैसा सत्यानाश कर लिया बताइए तो ?

जीवानन्द—(आँखें खोलकर) सत्यानाश कहाँ हुआ प्रफुल्ल ? यही तो मेरे

पार होनेका पाथेय है। इसके सिवा इस जीवनमें मेरे पास और पूँजी ही क्या थी ?

[तेजीके साथ एककौड़ीका प्रवेश। उसके हाथमें एक काँचकी शीशी है।]

एककौड़ी—(प्रफुल्लसे) अभी तुरत हुजूरको इसे पिला दीजिए। बल्लभ डाक्टर दौड़े आ रहे हैं,—आ ही पहुँचे समझिए।

प्रफुल्ल—(शीशी हाथमें लेकर जीवानन्दके पास जाकर) भइया, यह दवा जरा पीनी होगी।

जीवानन्द—(आँखें मींचे हुए ही) पीनी होगी ? दो। (दवा पीकर) कहीं मानों बड़ा-भारी दर्द हो रहा है प्रफुल्ल, मानो इस दर्दकी कोई सीमा ही नहीं। ऊःफ्—

प्रफुल्ल—(व्याकुल कण्ठसे) एककौड़ी, देखो न जरा, डाक्टर कितनी दूर हैं—जाओ जरा फिर दौड़के।

एककौड़ी—दौड़ता हुआ ही जाता हूँ बाबू—

[तेजीसे प्रस्थान।

जीवानन्द—दौड़-धूपसे अब क्या होगा प्रफुल्ल ! मालूम होता है जैसे आज अब तुम लोग मुझे दौड़कर भी नहीं पा सकोगे।

प्रफुल्ल—(पास ही घुटने टेकके बैठकर) ऐसा तो कितनी ही बार हो चुका है, भइया। आज ऐसा क्यों सोच रहे हैं ?

जीवानन्द—सोच रहा हूँ ? नहीं प्रफुल्ल, अब सोच नहीं करता। (जरा हँसकर) बीमारी बहुत बार हुई है और आराम भी हो गया है, यह ठीक है। पर अबकी बार किसी भी तरह आराम नहीं हो सकता, यह भी वैसा ही ठीक है, प्रफुल्ल।

[एककौड़ी और बल्लभ डाक्टरका प्रवेश]

प्रफुल्ल—(उठके खड़े होकर) आइए डाक्टर साहब !

बल्लभ—हुजूरकी तबीयत खराब है,—दौड़ता हुआ आ रहा हूँ। दवा तो पिला दी है ?

एककौड़ी—हाँ डाक्टर साहब, उसी वक्त पिला दी गई है। दवाकी शीशी हाथमें लिए दौड़ा आया—कई जगह तो गिरते-गिरते बचा।

[बल्लभ डाक्टर पास जाकर बैठ जाता है। कुछ देर तक नाड़ी देखकर मुँह विकृत कर लेता है। फिर सिर हिलाकर प्रफुल्लको इशारेसे कहता है कि हालत अच्छी नहीं मालूम हो रही है।]

एककौड़ी—(आकुल कण्ठसे) तो क्या होगा डाक्टर साहब ? खूब कोई अच्छी जोरकी दवा दीजिए,—हम लोग डबल विजिट देंगे,—आप जो चाहेंगे, सो देंगे—

प्रफुल्ल—जो चाहेंगे, सो ही देंगे ? सिर्फ इतना ही ? वह कितना-सा होगा एककौड़ी ? हम लोग उससे भी बहुत, बहुत ज्यादह देंगे। मेरे अपने प्राणोंके दाम ज्यादा नहीं हैं, पर उसे देना भी आज बहुत ही तुच्छ मालूम होता है, डाक्टर साहब।

बल्लभ—(ऊपरको मुँह उठाकर) सब-कुछ उसके हाथमें है, नहीं तो हम लोगोंकी क्या हस्ती है ! निमित्त मात्र हैं ! लोक व्यर्थ ही कहा करते हैं कि चण्डीगढ़का बल्लभ डाक्टर मुरदेको जिला सकता है ! दवाकी पेटी साथ ही लेता आया हूँ, इसमें गलती मुझसे नहीं होती। चलिए, नन्दी साहब, जल्दीसे एक मिक्स्चर बना दूँ !

[एककौड़ी और बल्लभका प्रस्थान।

जीवानन्द—आँखें मीचे पड़े-पड़े कितने क्या क्या खयाल आ रहे थे मनमें प्रफुल्ल ! मालूम होता था, अजीब है यह दुनिया ! नहीं तो मेरे लिए आँसू बहानेको तुम्हें मैं कैसे पाता ?

प्रफुल्ल—आप तो जानते हैं—

जीवानन्द—जानता क्यों नहीं प्रफुल्ल ! पर एककौड़ी इसे क्या जाने ? वह समझता है, उसीकी तरह तुम भी सिर्फ एक कर्मचारी हो, एक पाजी जमींदारके वैसे ही खोटे साथी हो। कितना किया है तुमने मेरे लिए चुपचाप और कितना सहते रहे हो, बाहरके आदमी इसको क्या जानें ? बीच-बीचमें जब असह्य हो उठा है, तब दो गस्सा दाल-रोटीके जुटानेका बहाना करके छोड़ जानेका भी तुमने इरादा किया है, पर मैंने जाने नहीं दिया। आज सोचता हूँ—अच्छा ही किया। सचमुच ही अगर छोड़कर चले जाते प्रफुल, तो आजका दुःख रखनेको जगह कहाँ मिलती ?

प्रफुल्ल—भइया—

जीवानन्द—जरा कागज-कलम लाओ न प्रफुल्ल, अपने भइयाका स्नेहका दान—

प्रफुल्ल—(पाँवोंतले घुटने टेककर) स्नेह आपका बहुत मिला है भइया, सिर्फ वही मेरी पूँजी होकर बनी रहे। आप मुझे सिर्फ यही आशीर्वाद दीजिए कि अपने परिश्रमसे जो कुछ पाऊँ, इस जीवनमें उससे ज्यादाके लिए मैं लोभ न करूँ।

जीवानन्द—(क्षण-भर निस्तब्ध रहकर) अच्छी बात है, ऐसा ही हो प्रफुल्ल। दान करके तुम्हें मैं छोटा न कर जाऊँगा। मगर लोभी तो तुम किसी दिन भी न थे।

[वल्लभ डाक्टर चुपकेसे दबे पाँव भीतर आता है और दवाका पात्र प्रफुल्लके हाथमें थमाकर उसी तरह दबे पाँव वापस चला जाता है।]

प्रफुल्ल—भइया, इस दवाको पी लीजिए।

[प्रफुल्ल पास आकर जीवानन्दके मुँहमें दवा उँड़ेल देता है और अपनी धोतीके छोरसे उनके ओठ पोंछ देता है।]

जीवानन्द—कैसा भयानक अँधेरा है प्रफुल्ल। कितनी रात हो गई ?

प्रफुल्ल—रात तो अभी नहीं हुई, भइया।

जीवानन्द—नहीं हुई ? तो फिर मेरी आँखोंके आगे यह घोर अन्धकार काहेका है प्रफुल्ल ?

प्रफुल्ल—अँधेरा तो नहीं है, भइया। अभी तो सूरज भी नहीं डूबा।

जीवानन्द—नहीं डूबा ? सूरज अभी डूबा नहीं ? तो खोल दो, खोल दो, मेरे सामनेका जंगला खोल दो, प्रफुल्ल, एक बार देख लूँ उन्हें। जानेके पहले अपना अन्तिम नमस्कार जता जाऊँ उन्हें।

[प्रफुल्ल सामनेका वातायन खोल देता है और पास जाकर जीवानन्दके इशारेके अनुसार सावधानीसे उनका सिराहना ऊँचा कर देता है। सामने बारुई नदीकी शीर्ण जल-धारा मन्द गतिसे बह रही है। उसपार सूर्य अस्तोन्मुख हो रहा है। दूरीपर नीला जंगल आरक्त आभासे रंजित है। नदी-तटकी धूसर बालुका-राशि उज्ज्वल हो उठी है।]

जीवानन्द—(आँखें खोलकर काँपते हुए हाथोंको जोड़कर सिरसे लगाकर कुछ देरतक स्तब्ध रहनेके बाद) विश्वदेव ! कौन कहता है तुम अपरिचित हो!

तुम चिर-रहस्यसे ढँके हुए हो ? जन्म-जन्मातरके सहस्र परिचय आज जानेके दिन तुम्हारे मुँहपर स्पष्ट देख रहा हूँ। (क्षण-भर नीरव रहकर) सोचा था, शायद तुम्हें देखकर डर लगेगा,—शायद, इस जीवनकी सैकड़ों ग्लानियाँ लम्बी लम्बी काली छाया डाले आज तुम्हारे मुँहको ढक देंगी, पर सो तो होने नहीं दिया! बन्धु, इस जीवनका मेरा शेष नमस्कार तुम स्वीकार करो। (श्रान्तिके मारे लुढ़ककर) उःफ्—बड़ा दर्द है !

प्रफुल्ल—(व्याकुल कण्ठसे) कहाँ दर्द है भइया ?

जीवानन्द—कहाँ ? सिरमें, छातीमें, सारे शरीरमें,—प्रफुल्ल—उःफ्—

[तेजीसे षोड़शीका प्रवेश। उसके पीछे एककौड़ी और बल्लभ डॉक्टर हैं।]

षोड़शी—यह सब क्या कह रहे हैं प्रफुल्ल ?

(जीवानन्दके पैरों-तले बैठ जाती है।)

षोड़शी—तुम्हें ले जानेके लिए तो मैं आज सब कुछ छोड़कर चली आई हूँ। पर हाय निठुर, अभिमानमें आकर तुमने यह क्या किया !

प्रफुल्ल—भइया, आँखें खोलिए, देखिए, अलका आई हैं।

जीवानन्द—अलका ? आई हो तुम ? (धीरेसे सिर हिलाकर) पर अब तो समय नहीं रहा।

षोड़शी—लेकिन, उस दिन तो तुमने कहा था कि तुम संसारमें जीना चाहते हो—आदमियोंमें आदमियोंकी तरह। तुम घर चाहते हो, गृहस्थी चाहते हो, स्त्री चाहते हो, सन्तान चाहते हो—

जीवानन्द—(सिर हिलाकर) नहीं। आज झाँसा देकर और कुछ भी नहीं चाहता अलका! हमेशा बराबर झाँसा और धोखा देकर पाते रहनेसे ही मेरा हौसला बढ़ गया था। सोचा था—ऐसा ही होता होगा। पर आज उन सबकी कैफियत देनेका दिन आ पहुँचा। जिस सौभाग्यको इस जीवनमें उपार्जन नहीं कर सका, वही तो ऋण है,—चाहता हूँ कि वह बोझ अब मेरा न बढ़े।

(षोड़शी जीवानन्दकी छातीपर सिर रख देती है और वह धीरे-धीरे अपना कमजोर हाथ षोड़शीके सिरपर रख देता है)

जीवानन्द—अभिमान था क्यों नहीं थोड़ा-बहुत। फिर भी, जानेके पहले यह पा तो लिया तुम्हें। इससे अधिक पाना दुनियादारीके रोजमर्राके कामोंमें

शायद कभी क्षुण्ण और कभी म्लान हो जाता; मगर अब वह डर नहीं रहा इस मिलनका अब विच्छेद नहीं है, अलका, यही अच्छा है। यही अच्छा है

(षोड़शी बात नहीं कर सकती, दुःसह रोदनके वेगसे उसका सम्पूर्ण वक्षःस्थल उफन-उफन उठने लगता है।)

जीवानन्द—उःफ् ! दुनियामें अब क्या हवा नहीं रही प्रफुल्ल ?

प्रफुल्ल—तकलीफ क्या बहुत ज्यादा हो रही है भइया ? क्या डाक्टरको बुलवाऊँ ?

जीवानन्द—नहीं नहीं, अब डाक्टर-वैद्यकी जरूरत नहीं, प्रफुल्ल।—सिर्फ तुम और अलका, बस ! उःफ्—कैसा घोर अन्धकार है ! सूर्य क्या अस्त हो गया भाई ?

प्रफुल्ल—अभी हाल ही हुआ है, भइया।

जीवानन्द—इसीसे। हवा नहीं, प्रकाश नहीं, विश्वदेव ! इस जीवनका शेष दान तो क्या निःशेष करके ही ले लिया ! ओःफ्—

षोड़शी—पतिदेव, स्वामी !

प्रफुल्ल—प्रफुल्लको क्या आज सचमुच ही छुट्टी दे दी, भइया !

समाप्त